पाँचवाँ-कर्मग्रन्थ

ज्ञानावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म

वेदनीय कर्म

मोहनीय कर्म

आयुष्य कर्म

अंतराय कर्म

गोत्र कर्म

नाम कर्म

संपादक : पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी विरचित–

पाँचवाँ-कर्मग्रन्थ

◆ सम्पादक ◆

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति, दीक्षा के दानवीर

स्व.पू.आ. श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा

के तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवीं सदी के महान् योगी,

नवकार महामंत्र के अजोड़ साधक, चिन्तक एवं अनुप्रेक्षक

भावाचार्य तुल्य पूज्यपाद **पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के

कृपापात्र चरम शिष्यरत्न सर्वाधिक

हिन्दी साहित्य सर्जक **मरुधररत्न, गोडवाड के गौरव पूज्यपाद आचार्यदेव**

श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी महाराज

204

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेम्बर्स,

507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार,

सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईन्स (E), मुम्बई-400 002.

Tel. 022-4002 0120, Mobile : 9892069330

आवृत्ति : प्रथम • मूल्य : 100/- रुपये • प्रतियां : 750
विमोचन स्थल : महावीर जिनालय, मैसूर • दि. 22-11-2018

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य - जैन इतिहास - जैन तत्त्वज्ञान - जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हो तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य *आचार्यदेव श्रीमद् विजय* ***रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.*** द्वारा आलेखित उपलब्ध साहित्य में से 10 पुस्तकें दी जाएगी और अर्हद् दिव्य संदेश मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. **चेतन हसमुखलालजी मेहता,** भायंदर. **M. 9867058940**
2. **प्रवीण गुरुजी,** आत्म कमल लब्धिसूरि ज्ञान भंडार, आदिनाथ जैन मंदिर, चिकपेठ, बेंगलोर-**560 053. M. 9036810930**

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन, C/o. सुरेन्द्र जैन,
205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.ओस.ओस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. **T. 022-40020120**

(2) प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

(3) राहुल वैद, C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006. M. 9810353108

प्रकाशक की कलम से...

बीसवीं सदी के महान् योगी भावाचार्य तुल्य **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न हिन्दी साहित्यकार **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा हिन्दी भाषा में संपादित **'पाँचवाँ-कर्मग्रंथ'** हिन्दी विवेचन का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

श्वे.मू.जैन संघ में वर्षों से हिन्दी साहित्य की जो कमी थी, उसकी पूर्ति के लिए पूज्य आचार्य श्री का वर्षों से निरंतर प्रयास रहा है ।

इसी के फलस्वरुप उन्हीं की सत्प्रेरणा से स्थापित दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट की ओर से स्व. पूज्य पंन्यासजी म. एवं पूज्य आचार्य भगवंत की लगभग **205 पुस्तकों** का प्रकाशन हो चुका है ।

हम उन सभी दानदाताओं के भी खूब आभारी हैं जिनके अर्थ-सहयोग से इस साहित्य का प्रकाशन द्रुत गति से आगे बढ सका है ।

हमें पूर्ण विश्वास है कि अत्यंत ही सरल, सुबोध व सुवाच्य शैली में प्रकाशित यह साहित्य हिन्दीभाषी प्रजा को खूब पसंद आएगा ।

निवेदक :

दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट मंडल
मिलापचंद सुरचंदजी पिंडवाड़ा
सागरमल भभूतमलजी-लुणावा
प्रकाशचंद हरकचंदजी राठौड़-बाली
रमेशकुमार ताराचंदजी-खिवांडी
सुरेन्द्र सोहनलालजी राठौड़
ललिततेजराजजी राठौड़

सम्पादक की कलम से...

महोपाध्याय यशोविजयजी म. ने सम्यक्त्व के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए समकित के 67 बोल की सज्झाय की रचना की है ।

'सम्यक्त्व के 67 बोल' में आत्मा के षट्स्थान की बात आती है–

(1) आत्मा है (2) आत्मा परिणामी नित्य है ।

(3) आत्मा कर्म की कर्त्ता है । (4) आत्मा कर्म की भोक्ता है ।

(5) आत्मा की कर्म से मुक्ति है ।

(6) आत्मा के कर्म की मुक्ति का उपाय है ।

अभव्य आत्मा, आत्मा को कर्म की कर्ता है और कर्म की भोक्ता है, मानती है परंतु आत्मा कर्म से मुक्त हो सकती है और कर्म से मुक्ति पाने का उपाय है, इस बात को स्वीकार नहीं करती है ।

जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार आत्मा और कर्म का संयोग अनादि काल से है, फिर भी आत्मा कर्म के संयोग से सदा काल के लिए मुक्त हो सकती है ।

प्रवाह की अपेक्षा आत्मा और कर्म का संयोग अनादि काल से है, फिर भी व्यक्तिगत कर्म की अपेक्षा से तो हर कर्म के संयोग की आदि भी है और अंत भी है । आत्मा स्वयं अरूपी है, परंतु आत्मा पर लगने वाले कर्म रूपी हैं ।

आत्मा राग-द्वेष के कारण कर्म का बंध करती है ।

राग-द्वेष को भावकर्म कहते हैं ।

भावकर्म के कारण ही आत्मा द्रव्यकर्म का बंध करती है ।

कर्म के कारण ही आत्मा संसार में जन्म धारण करती है और शरीर के साथ जुड़ती है । शरीर के कारण ही आत्मा को मृत्यु की पीड़ा सहन करनी पड़ती है । आत्मा पर लगे हुए कर्मबंध के चार प्रकार हैं–

(1) प्रकृति बंध (2) स्थितिबंध (3) रसबंध और (4) प्रदेशबंध

ज्ञानावरणीय आदि आठ, कर्म की प्रकृतियाँ हैं ।

आत्मा पर लगे हुए कर्म का संबंध आत्मा के साथ कब तक रहेगा ? उसे स्थितिबंध कहते हैं ।

कर्म में फल देने की शक्ति को रसबंध कहते हैं ।

आत्मा कर्मबंध के साथ कितने कार्मण परमाणुओं को ग्रहण करती है उसे प्रदेशबंध कहते हैं ।

तपागच्छ के आद्य **आचार्य जगच्चन्द्रसूरिजी म.** के पट्टधररत्न विद्वद्वर्य **पू. आचार्य देवेन्द्रसूरिजी म.** ने जिन पाँच कर्मग्रंथों की रचना की है, उनमें चार कर्मग्रंथों पर हिन्दी विवेचन प्रकट हो चुके हैं, अब पाँचवें कर्मग्रंथ का हिन्दी विवेचन प्रकाशित हो रहा है ।

पू.देवेन्द्रसूरिजी म. ने प्राचीन कर्मग्रंथों तथा पंच संग्रह कम्मपयडि आदि ग्रंथों के आधार पर सरल व सुबोध शैली में इन पांच कर्मग्रंथों की रचना कर भावी पीढी पर महान् उपकार किया है ।

काल के प्रवाह से जैनसंघ में प्राकृत व संस्कृत भाषा का अभ्यास घटता जा रहा है । साधु-साध्वीवृंद में तो फिर भी इन भाषाओं का पठन-पाठन और स्वाध्याय है, परंतु श्रावक-श्राविका वर्ग में से तो ये भाषाएँ लुप्त-प्रायः हो चुकी हैं । किसी भी संघ में इन भाषाओं के ज्ञाता नहींवत् हैं ।

इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर निकट भूतकाल में इन कर्मग्रंथों पर अनेक गुजराती विवेचन प्रकाशित हुए है । हिन्दी भाषा में भी **पू.सुखलालजी** व स्थानकवासी **मिश्रीमलजी म.** के विवेचन प्रकाशित हुए हैं । उन सभी विवेचनकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । हिन्दी-गुजराती उन सभी अनुवादों को ध्यान में रखकर यह हिन्दी विवेचन तैयार किया है । यह विवेचन न अतिसंक्षेप में है और न अधिक विस्तार में । मुझे आत्म-विश्वास है कि यह विवेचन हिन्दीभाषी तत्त्वपिपासुओं को अवश्य लाभदायी सिद्ध होगा ।

भारत देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है परंतु श्वे.मू. जैन संघ में हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी कमी रही है ।

नमस्कार महामंत्र के अजोड़ साधक, निःस्पृह शिरोमणि, भवोदधितारक, परमोपकारी, वात्सल्यसिंधु पूज्यपाद गुरुदेव **पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** की अदृश्य कृपावर्षा के बल से ही यह साहित्य-यात्रा गतिमान है ।

बस, इन महापुरुष की कृपावर्षा सदैव बरसती रहे, इसी अपेक्षा के साथ !

महावीर भवन, मैसूर (कर्णाटक)
जेठ सुदी-5, वि.सं. 2074
दि. 18-6-2018

निवेदक
अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य कृपाकांक्षी
रत्नसेनसूरि

हिन्दी साहित्यकार मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू. आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलास नगर
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धूम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपूर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढ़ी	2047	नवयुवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारित के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते हैं	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्त्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करें	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव	2051	पू. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	कुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	कुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	Chaitya Vandan Sootra	2052	अंग्रेजी हिन्दी में मूल सूत्र	
53.	सफलता की सीढ़ियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छह महापुरुष	सायन

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बूंदें	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पाँच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्त्वज्ञान सीखें !	2056	जैन तत्त्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
88.	आओ ! पूजा पढ़ाएँ !	2058	चौसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी अनुवाद	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर
101.	अमरवाणी	2060	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.के प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी अनुवाद	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरूप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी अनु.	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि के सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएँ	2064	नवपद...आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियाँ	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करें	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएँ	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएँ	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.के पत्र	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	लगभग छोटे-मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिविर-रोहा के प्रवचन	धारावी
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोश	2068	शास्त्रीय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धांजंलि लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियाँ	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करें! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपुर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडें ! भाग-1	2070	दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडें ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन कीर्ति स्तम्भ	घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर में सागर-1	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देवद्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनो !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	कर्मग्रंथ भाग-2	2073	दूसरे व तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	कर्मग्रंथ भाग-3	2073	चौथे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
198.	आदर्श कहानियाँ	2074	प्रेरणादायी कहानियाँ	बेंगलोर
199.	प्रवचन वर्षा	2074	प्रवचन के बिंदु	सुशीलधाम
200.	अमृत रस का प्याला	2074	199 पुस्तकों का सार	बेंगलोर
201.	महान् योगी पुरुष	2074	पं. भद्रंकरविजयजी के जीवन प्रसंग	बेंगलोर
202.	बारह चक्रवर्ती	2074	बारह चक्रवर्तियों का जीवन	मैसूर
203.	प्रेरक प्रवचन	2074	प्रेरणादायी प्रवचन	मैसूर
204.	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	2075	कर्मग्रंथ का विवेचन	मैसूर

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ-मूलसूत्र

नमिय जिणं धुवबंधोदयसत्ताघाइपुन्नपरियत्ता ।
सेयर चउहविवागा वुच्छं बन्धविह सामी य ।।1।।
वन्नचउतेयकम्मागुरुलहु निमिणोवघाय भयकुच्छा ।
मिच्छकसायावरणा विग्घं धुवबंधि सगचत्ता ।।2।।
तणुवंगागिइसंघयण जाइगइखगइपुव्विजिणुसासं ।
उज्जोयायवपरघा तसवीसा गोय वयणियं ।।3।।
हासाइजुयलदुगवेय आउ तेवुत्तरी अधुवबंधा ।
भंगा अणाइसाई अणंतसंत्तुत्तरा चउरो ।।4।।
पढमबिया धुवउदइसु धुवबंधिसु तइअवज्जभंगतिगं ।
मिच्छम्मि तिन्नि भंगा दुहावि अधुवा तुरिअभंगा ।।5।।
निमिण थिर अथिर अगुरुय, सुहअसुहं तेय कम्म चउवन्ना ।
नाणंतराय दंसण, मिच्छं धुवउदय सगवीसा ।।6।।
थिर-सुभियर विणु अधुवबंधी मिच्छ विणु मोहधुवबंधी ।
निद्दोवघाय मोसं सम्मं पणनवइ अधुवुदया ।।7।।
तसवन्नवीस सगतेय-कम्म धुवबंधि सेस वेयतिगं ।
आगिइतिग वेयणियं दुजुयल सगउरल सासचऊ ।।8।।
खगइतिरिदुग नीयं धुवसंता सम्म मीस मणुयदुगं ।
विउविक्कार जिणाऊ हारसगुच्चा अधुवसंता ।।9।।
पढमतिगुणेसु मिच्छं नियमा अजयाइअट्ठगे भज्जं ।
सासाणे खलु सम्मं संतं मिच्छाइदसगे वा ।।10।।
सासणमीसेसु धुवं मीसं मिच्छाइनवसु भयणाए ।
आइदुगे अण नियमा भइया मीसाइनवगम्मि ।।11।।
आहारसत्तगं वा सव्वगुणे बितिगुणे विणा तित्थं ।
नोभयसंते मिच्छो अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ।।12।।
केवलजुयलावरणा पणनिद्दा बारसाइमकसाया ।
मिच्छं ति सव्वघाइ, चउणाणतिदसंणावरणा ।।13।।
संजलण नोकसाया विग्घं इय देसघाइय अघाई ।
पत्तेयतणुट्ठाऊ तसवीसा गोयदुग वन्ना ।।14।।
सुरनरतिगुच्च साय तसदस तणूवंगवइरचउरंसं ।
परघासग तिरिआऊं वन्नचउ पंणिदि सुभखगइ ।।15।।
बायालपुन्नपगई अपढमसंठाणखगइसंघयणा ।
तिरियदुग असायनीयोवघाय इगविगल निरयतिगं ।।16।।

थावरदास वन्नचउक्क घाइपणयालसहिय बासोई ।
पावपयडित्ति दोसुवि वन्नाइगहा सुहा असुहा ।।17।।
नामधुवबंधिनवगं दंसण पणनाणविग्घ परघायं ।
भयकुच्छमिच्छसासं जिण गुणतीसा अपरियत्ता ।।18।।
तणुअट्ठवेय दुजुयल कसाय उज्जोयगोयदुग निद्दा ।
तसवीसाउ परित्ता खित्तविवागाऽणुपुव्वीओ ।।19।।
घणघाइ दुगोय जिणा तसियरतिग सुभगदुभगचउ सासं ।
जाइतिग जियविवागा आऊ चउरो भवविवागा ।।20।।
नामधुवोदय चउतणूवघायसाहारणियर जोयतिग ।
पुग्गलविवागि बंधो पयइठिइरसपएसत्ति ।।21।।
मूलपयडीण अट्ठसत्तछेगबंधेसु तिन्नि भूगारा ।
अप्पतरा तिय चउरो अवट्ठिया ण हु अवत्तव्वो ।।22।।
एगादहिगे भूओ एगाई ऊणगम्मि अप्पतरो ।
तम्मत्तोऽवट्ठियओ पढमे समए अवत्तव्वो ।।23।।
नव छ चउ दंसे दु दु तिदु मोहे दु इगवीस सत्तरस ।
तेरस नव पण चउ ति दु इक्को नव अट्ठ दस दुन्नि ।।24।।
तिपणछअट्ठनवहिया वीसा तीसेगतीस इग नामे ।
छस्सगअट्ठतिबन्धा सेसेसु य ठाणमिक्किक्कं ।।25।।
वीसयर कोडिकोडी नामे गोए य सत्तरी मोहे ।
तीसयर चउसु उदही निरयसुराउंमि तित्तीसा ।।26।।
मुत्तुं अकसायठिइं बार मुहुत्ता जहन्न वेयणिए ।
अट्ठट्ठ नामगोएसु सेसएसु मुहुत्ततो ।।27।।
विग्घावरणअसाए तीसं अट्ठार सुहुमविगलतिगे ।
पढमागिइसंघयणे दस दुसुवरिमेसु दुगवुड्ढी ।।28।।
चालीस कसाएसुं मिउलहुनिद्धुण्हसुर हिसियमहुरे ।
दस दोसढ्ढसमहिया ते हा लिहं बिलाईणं ।।29।।
दस सुहविहगई उच्चे सुरदुग थिरछक्क पुरिसरइहासे ।
मिच्छे सत्तरि मणुदुगइत्थीसाएसु पन्नरस ।।30।।
भयकुच्छअरइसोए विउव्वितिरिउरलनिरयदुगनीए ।
तेयपण अथिरछक्के तसचउथावरइगपणिंदी ।।31।।
नपुकुखगइसासचउगुरुकक्खडरुक्खसीयदुग्गंधे ।
वीसं कोड़ा-कोड़ी एवइयावाह वाससया ।।32।।
गुरु कोड़ि-कोड़ि अंतो तित्थाहाराण भिन्नमुहु बाहा ।
लहुठिइ संखगूणूणा नरतिरियाणाउ पल्लतिगं ।।33।।

इगविगल पुव्वकोडिं पलियासंखस आउचउ अमणा ।
निरुवकमाण छमासा अबाह सेसाण भवतंसो ।।34।।
लहुठिइबंधो सजलणलोह पण विग्घनाणदंसेसु ।
भिन्नमुहुत्तं ते अट्ठ जसुच्चे बारस य साए ।।35।।
दो इगमासो पक्खो संजलणतिगे पुमट्ठवरिसाणि ।
सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईइ जं लद्धं ।।36।।
अयमुक्कोसो गिंदिसु पलियासंखंसहीण लहुबंधो ।
कमसो पणवीसाए पन्नासयसहस्ससंगुणिओ ।।37।।
विगलिअसन्निसु जिट्ठो कणिट्ठउ पल्लसंखभागूणो ।
सुरनरयाउ समादससहस्स सेसाउ खुड्डभवं ।।38।।
सव्वाणवि लहुबंधे भिन्नमुहू अबाह आउजिट्ठे वि ।
केइ सुराउसमं जिणमंतमुहू बिंति आहारं ।।39।।
सत्तरससमहिया किर इगाणुपाणुमि हुंति खुड्डभवा ।
सगतीससयत्तिहुत्तर पाणु पुण इगमुहुत्तंमि ।।40।।
पणसट्ठिसहस्सपणसय छत्तीसा इगमुहुत्तखुड्डभवा ।
आवलियाणं दोसय छप्पन्ना एगखुड्डभवे ।।41।।
अविरयसम्मो तित्थं आहारदुगामराउ य पमत्तो ।
मिच्छदिट्ठी बंधइ जिट्ठठिई सेसपयडीणं ।।42।।
विगलसुहुमाउगतिगं तिरिमणुया सुरविउव्विनिरयदुगं ।
एगिंदियावरायव आईसाणा सुरुक्कोसं ।।43।।
तिरिउरलदुगुज्जोयं छिवट्ठ सुरनिरय सेस चउगइया ।
आहार जिणमपुव्वोऽनियट्टि संजलण पुरिस लहुं ।।44।।
सायजसुच्चावरणा विग्घं सुहुमो विउव्विछ असन्नी ।
सन्नीवि आउ बायरपज्जेगिंदिउ सेसाणं ।।45।।
उक्कोसजहन्नेयरभंगा साइ अणाइ धुव अधुवा ।
चउहा सग अजहन्नो सेसतिगे आउचउसु दुहा ।।46।।
चउभेओ अजहन्नो संजलणावरणनवगविग्घाणं ।
सेसतिगि साइ अधुवो तह चउहा सेसपयडीणं ।।47।।
साणाइअपुव्वंते अयरंतो कोडिकोडिओ न हिगो ।
बंधो न हु हीणो न य मिच्छे भव्वियरसन्निमि ।।48।।
जइलहुबंधो बायर पज्ज असंखगुण सुहुमपज्जहिगो ।
एसिं अपज्जाण लहू सुहूमेअरअपजपज्ज गुरु ।।49।।
लहु बिय पज्जअपज्जे अपजेयर बिय गुरु हिगो एवं ।
ति चउ असन्निसु नवरं संखगुणो बियअमणपज्जे ।।50।।

तो जइजिट्ठो बंधो संखगुणो देसविरय हस्सियरो ।
सम्मचउ सन्निचउरो ठिइबंधाणुकम संखगुणा ।।51।।
सव्वाण वि जिट्ठठिई असुमा जं साइसंकिलेसेण ।
इयरा विसोहिओ पुण मुत्तुं नरअमरतिरियाउं ।।52।।
सुहुमनिगोयाइखणाप्पजोग-बायरयविगलअमणमणा ।
अपज्ज लहु पढमदुगुरु पजहस्सियरो असंखगुणो ।।53।।
अपजत्त तसुक्कोसो पज्जजहन्नियरु एव ठिइठाणा ।
अपजेयर संखगुणा परमपजबिए असंखगुणा ।।54।।
पइखणमसंखगुणविरिय अपज पइठिइमसंखलोगसमा ।
अज्झवसाया अहिया सत्तसु आउसु असंखगुणा ।।55।।
तिरिनरयतिजोयाणं नरभवजुय सचउपल्ल तेसट्ठं ।
थावरचउइगविगलायवेसु पणसीइसयमयरा ।।56।।
अपढमसंघयणागिइखगइ अणमिच्छदुभगथीणतिगं ।
निय नपु इत्थि दुतीसं पंणिदिसु अबन्धठिइ परमा ।।57।।
विजयाइसु गेविज्जे तमाइ दहिसय दुतीस तेसट्ठं ।
पणसीइ सययबंधो पल्लतिगं सुरविउव्विदुगे ।।58।।
समयादसंखकालं तिरिदुगनीएसु आउ अंतमुहू ।
उरलि असंखपरट्टा सायठिई पुव्वकोडूणा ।।59।।
जलहिसयं पणसीयं परघुस्सासे पणिंदितसचउगे ।
बत्तीसं सुहविहराइ पुमसुभगतिगुच्चचउरसे ।।60।।
असुखगइजाइआगिइ संघयणाहारनरयजोयदुगं ।
थिरसुभजसथावरदसनपुइत्थीदुजुयलमसायं ।।61।।
समयादंतमुहुर्त मणुदुगजिणवइरउर लवंगेसु ।
तित्तोसयरा परमा अंतमुहू लहू वि आउजिणे ।।62।।
तिव्वो असुहसुहाणं संकेसविसोहिओ विवज्जयउ ।
मंदरसो गिरिमहिरयजलरेहासरिसकसाएहिं ।।63।।
चउठाणाई असुहा सुहन्नहा विग्घदेसघाइआवरणा ।
पुमसंजलणिगदुतिचउठाणरसा सेसा दुगमाई ।।64।।
निंबुच्छरसो सहजो दुतिचउभाग कड्ढइक्कभागंतो ।
इगठाणाई असुहो असुहाणं सुहो सुहाणं तु ।।65।।
तिव्वमिगथावरायव सुरमिच्छा विगलसुहुमनिरयतिगं ।
तिरिमणुयाउ तिरिनरा तिरिदुग छेवट्ठ सुरनिरया ।।66।।
विउव्विसुराहारदुगं सुखगइ वन्नचउतेयजिणसायं ।
समचउपरघातसदस पणिंदिसासुच्च खवगाउ ।।67।।

तमतमगा उज्जोयं सम्मसुरा मणुयउरलदुगवइरं ।
अपमत्तो अमराउं चउगइमिच्छा उ सेसाणं ।।68।।
थीणतिगं अणमिच्छं मंदरसं संजमुम्मुहो मिच्छो ।
बियतियकसाय अविरय देस पमत्तो अरइसोए ।।69।।
अपमाइ हारगदुगं दुनिद्दअसुवन्नहासरइकुच्छा ।
भयमुवघायमपुव्वो अनियट्टी पुरिससंजलणे ।।70।।
विग्घावरणे सुहमो मणुतिरिया सुहुमविगलतिगआऊ ।
वेगुव्विछक्कममरा निरया उज्जोयउरलदुगं ।।71।।
तिरिदुगनिअं तमतमा जिणमविरय निरयविणिगथावरयं ।
आसुहुमायव सम्मो व सायथिरसुभजसा सिअरा ।।72।।
तसवन्नतेयचउमणुखगइदुग पणिंदिसासपरघुच्चं ।
संघयणागिइनपुत्थीसुभगियरति मिच्छा चउगइया ।।73।।
चउतेयवन्नवेयणिय नामणुक्कोस सेसधुवबंधी ।
घाईणं अजहन्नो गोए दुविहो इमो चउहा ।।74।।
इगदुगणुगाइ जा अभवणंत गुणियाणू ।
खंधा उरलोचियवग्गणा उ तह अगहणतरिया ।।75।।
एमेव विउव्वाहारतेयभासाणुपाणमणकम्मे ।
सुहुमा कमावगाहो ऊणूणंगुलअसंखंसो ।।76।।
इक्किक्कहिया सिद्धाणंतसा अंतरेसु अग्गहणा ।
सव्वत्थ जहन्नुचिया नियणंतंसाहिया जिट्ठा ।।77।।
अंतिमचउफासदुगंध-पंचवन्नरसकम्मखंधदलं ।
सव्वजियणंतगुणरसमणुजुत्तमणंतयपएसं ।।78।।
एगपएसोगाढं नियसव्वपएसउ गहेइ जिऊ ।
थेवो आउ तदसो नामे गोए समो अहिउ ।।79।।
विग्घावरणे मोहे सव्वोवरि वेयणीय जेणप्पे ।
तस्स फुडत्तं न हवइ ठिईविसेसेण सेसाणं ।।80।।
नियजाइलद्धदलियाणंतंसो होइ सव्वघाईणं ।
बज्झंतीण विभज्जइ सेस सेसाण पइसमयं ।।81।।
सम्मदरसव्वविरई अणविसंजोयदंस-खवगे य ।
मोहसमसंतखवगे खीणसजोगियर गुणसेढी ।।82।।
गुणसेढी दलरयणाऽणुसमयमुदयादसंखगुणणाए ।
एयगुणा पुण कमसो असंखगुण निज्जरा जीवा ।।83।।
पलियासंखंसमुहू सासणइयरगुण अंतरं हस्सं ।
गुरु मिच्छी बे छसट्ठी इयरगुणे पुग्गलद्धंतो ।।84।।

उद्धारअद्धखित्तं पलिय तिहा समयवाससयसमए ।
केसवहारो दीवोदहिआउतसाइपरिमाण ।।85।।
दव्वे खित्ते काले भावे चउह दुह बायरो सुहुमो ।
होइ अणंतुस्सप्पिणिपरिमाणो पुग्गलपरट्टो ।।86।।
उरलाइसत्तगेणं एगजिउ मुयइ फुसिय सव्वअणू ।
जत्तियकालि स थूलो दव्वे सुहुमो सगन्नयरा ।।87।।
लोगपएसोसप्पिणिसमया अणुभागबंधठाणा य ।
जह तह कममरणेणं पुट्ठा खित्ताइ थूलियरा ।।88।।
अप्पयरपयडिबंधी उक्कडजोगी य सन्निपज्जत्तो ।
कुणइ पएसुक्कोसं जहलयं तस्स वच्चम्से ।।89।।
मिच्छ अजयचउ आऊ बितिगुणबिणु मोहि सत्त मिच्छाई ।
छण्हं सतरस सुहुमो अजया देसा बितिकसाए ।।90।।
पण अनियट्टी सुखगइ नराउ-सुरसुभ, गतिग-विउव्विदुगं ।
समचउरंसमसायं वइरं मिच्छो व सम्मो वा ।।91।।
निद्दापयलादुजुयलभयकुच्छातित्थ सम्मगो सुजई ।
आहारदुगं सेसा उक्कोसपएसगा मिच्छो ।।92।।
सुमुणी दुन्नि असन्नी निरयतिगसुराउसुरविउव्विदुगं ।
सम्मो जिणं जहन्नं सुहुमनिगोयाइखणि सेसा ।।93।।
दंसणछगभयकुच्छाबितितुरियकसाय विग्घनाणाणं ।
मूलछगेऽणुक्कोसो चउह दुहा सेसि सव्वत्थ ।।94।।
सेढिअसंखिज्जंसे जोगट्ठाणाणि पयडिठिइभेया ।
ठिइबंधज्झवसायाणुभागठाणा असंखगुणा ।।95।।
तत्तो कम्मपएसा अणंतगुणिया तओ रसच्छेया ।
जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायाउ ।।96।।
चउदसरज्जू लोगो बुद्धिकओ सत्तरज्जुमाणघणो ।
तद्दीहेगपएसा सेढी पयरो य तव्वग्गो ।।97।।
अणदंसनपुंसित्थीवेयछक्कं च पुरिसवेयं च ।
दो दो एगंतरिए सरिसे सरिसं उवसमेइ ।।98।।
अणमिच्छमीससम्मं तिआउ इगविगलथीणतिगुज्जोवं ।
तिरिनयरथावरदुगं साहारायवअडनपुत्थीए ।।99।।
छगपुंसंजलणादोनिद्दविग्घवरणक्खए नाणी ।
देविंदसूरिलिहियं सयगमिणं आयसरणट्ठा ।।100।।

नमिय जिणं धुवबंधोदयसत्ताघाइपुन्नपरियत्ता ।
सेयर चउहविवागा वुच्छं बन्धविह सामी य ।।1।।

–: शब्दार्थ :–

नमिय=नमस्कार करके,	**सेयर**=प्रतिपक्ष सहित,
जिणं=जिनेन्द्र देव को,	**चउह**=चार प्रकार से,
धुवबंध=ध्रुवबंधी,	**विवागा**=विपाक दिखानेवाली,
उदय=ध्रुव उदयी,	**वुच्छं**=कहूँगा,
सत्ता=ध्रुव सत्ता	**बंधविह**=बंध के भेद,
घाइ=घाती (सर्वघाती, देशघाती),	**सामी**=स्वामी (बंध के स्वामी),
पुन्न=पुण्य प्रकृति,	**य**=उपशम श्रेणी, क्षपक श्रेणी ।
परियत्ता=परावर्तमान,	

भावार्थ :–जिनेश्वर परमात्मा को नमस्कार कर, ध्रुव बंधी, ध्रुव उदयी, ध्रुव सत्ता, घाती, पुण्य तथा परावर्तमान प्रकृति उसके प्रतिपक्षी सहित अध्रुव बंधी, अध्रुव उदयी, अध्रुव सत्ता, आघाती, पाप, अपरावर्तमान तथा चार प्रकार से विपाक बतानेवाली प्रकृति, चार बंध विधि, बंध स्वामित्व, उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी का स्वरूप कहूंगा ।

विवेचन :–प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता देवेन्द्रसूरिजी महाराज हैं । उन्होंने कर्म के यथार्थ स्वरूप को समझाने के लिए पाँच कर्मग्रंथों की रचना की है ।

इस कर्मग्रंथ में 100 गाथाएँ होने से इसे शतक भी कहते हैं । इस ग्रंथ में उन्होंने 26 द्वारों से कर्म के यथार्थ स्वरूप को समझाया है ।

ग्रंथ के प्रारंभ में ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए जिनेश्वर परमात्मा को नमस्कार करके मंगलाचरण किया है । उसके बाद प्रस्तुत गाथा में 26 द्वारों का नामनिर्देश किया है ।

(1) ध्रुवबंधी : बंध का हेतु विद्यमान हो तब तक जिस प्रकृति का बंध सतत होता रहता है, उसे ध्रुवबंधी कहते हैं ।

ऐसी प्रकृतियाँ अपने बंधविच्छेद तक निरंतर बँधती रहती है । उदा. मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिथ्यात्व मोहनीय का बंध होता रहता है, अतः उसे ध्रुवबंधी कहते हैं ।

(2) अध्रुवबंधी : बंध के हेतु विद्यमान होने पर भी जिस प्रकृति का बंध

कभी होता है, कभी नहीं होता है, उसे अध्रुवबंधी प्रकृति कहते हैं । अशाता वेदनीय का बंध प्रमत्तगुणस्थानक तक होता है, परंतु कभी उसका बंध होता है, कभी नहीं, अतः उसे अध्रुव बंधी कहते हैं ।

(3) ध्रुवोदयी प्रकृति : जिस प्रकृति का उदय अपने उदय काल पर्यंत प्रत्येक समय में होता रहता है, उसे ध्रुवोदयी प्रकृति कहते हैं । उदा. मिथ्यात्व मोहनीय का विपाकोदय, मिथ्यात्व गुणस्थानक तक प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीव को होता रहता है, इस कारण मिथ्यात्व मोहनीय को ध्रुवोदयी प्रकृति कहते हैं ।

(4) अध्रुवोदयी प्रकृति : अपने उदयविच्छेद स्थान तक जिस प्रकृति का उदय कभी होता है, कभी नहीं होता है, उसे अध्रुवोदयी प्रकृति कहते हैं ।

(5) ध्रुव सत्ताक : सम्यक्त्व आदि गुणों की प्राप्ति न हो, तब तक जिस प्रकृति की सत्ता अवश्य होती है, उसे ध्रुवसत्ताक प्रकृति कहते हैं । उदा. सम्यक्त्वादि विशिष्ट गुण से रहित जीव को मिथ्यात्व मोहनीय की सत्ता बनी रहती है, उसे ध्रुवसत्ताक कहते हैं ।

(6) अध्रुव सत्ताक : जिस प्रकृति की सत्ता सम्यक्त्व आदि विशिष्ट गुण-रहित जीव को कभी होती है, कभी नहीं होती है, उसे अध्रुव सत्ताक कहते हैं ।

(7) घाती : जो कर्मप्रकृति आत्मा के ज्ञान आदि मूल गुणों का घात करती है, उसे घाती प्रकृति कहते हैं । सर्व प्रकार से मूलगुण को घात करनेवाली प्रकृति को सर्वघाती और आंशिक रूप से घात करनेवाली प्रकृति को देशघाती कहते हैं ।

(8) अघाती : जो कर्मप्रकृति आत्मा के मूलगुण का थोड़ा भी घात नहीं करती है, उसे अघाती कहते हैं । उदा. शाता वेदनीय ।

(9) पुण्य प्रकृति : जो कर्म प्रकृति आत्मा को सुख का अनुभव कराती है, उसे पुण्य प्रकृति कहते हैं । उदा. शाता वेदनीय ।

(10) पाप प्रकृति : जो प्रकृति आत्मा को दुःख का अनुभव कराती है, उसे पाप प्रकृति कहते हैं । उदा. अशाता वेदनीय ।

(11) परावर्तमान प्रकृति : जो प्रकृति अपने बंध, उदय अथवा बंध-उदय के समय अपनी सजातीय प्रकृति के बंध, उदय अथवा बंधोदय को रोक देती है । उसे परावर्तमान प्रकृति कहते हैं । उदा. शातावेदनीय ।

(12) अपरावर्तमान प्रकृति : जो प्रकृति अपने बंध, उदय अथवा बंधोदय के समय अपनी सजातीय प्रकृति के बंध-उदय व बंधोदय को नहीं रोकती है, उसे अपरावर्तमान प्रकृति कहते हैं । जैसे-मतिज्ञानावरणीय ।

(13) क्षेत्र विपाकी : जो कर्म प्रकृति विग्रहगति में उदय में आकर अपना फल बताती है, उसे क्षेत्रविपाकी कहते हैं । उदा. मनुष्य आनुपूर्वी नाम कर्म ।

(14) जीव विपाकी : जो कर्म प्रकृति जीव के ज्ञान आदि गुणों का ही उपघात करती है, उसे जीव विपाकी प्रकृति कहते हैं । उदा. श्रुत ज्ञानावरणीय ।

(15) भव विपाकी : जो कर्म प्रकृति अपना फल नरक आदि भवों में ही बताती है, उसे भवविपाकी कहते है । उदा. देव आयुष्य ।

(16) पुद्गल विपाकी : जो कर्म प्रकृति अपना फल शरीर रूप में परिणत पुद्गलों को बताती है, उसे पुद्गल विपाकी कहते हैं । उदा. वर्ण नाम कर्म ।

(17) प्रकृति बंध : आत्मा पर लगे हुए कर्मों में फल देने के स्वभाव के निर्णय को प्रकृतिबंध कहते हैं । जैसे-ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव ज्ञान गुण को रोकना है ।

(18) स्थिति बंध : बँधा हुआ कर्म आत्मा के साथ कितने समय तक लगा रहेगा ? उस काल मर्यादा के निर्णय को स्थितिबंध कहते हैं ।

(19) रस बंध : कर्म प्रकृति में कम-ज्यादा फल देने की शक्ति का जो निर्णय होता है, उसे रस बंध कहते हैं ।

(20) प्रदेश बंध : कर्मदलिकों के समूह को प्रदेशबंध कहते हैं ।

(21) प्रकृति बंध के स्वामी : जो जीव जितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करता है, वह उसका स्वामी कहलाता है ।

(22) स्थिति बंध का स्वामी : जो जीव कर्म की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति का बंध करता है, वह उसका स्वामी कहलाता है ।

(23) रसबंध का स्वामी : जो जीव कर्म का जघन्य-उत्कृष्ट रसबंध करता है, वह उसका स्वामी कहलाता है ।

(24) प्रदेश बंध का स्वामी : जो जीव जितने प्रमाण में कर्म के परमाणुओं का बंध करता है, वह उस प्रदेशबंध का स्वामी कहलाता है ।

(25) उपशम श्रेणी : विशुद्ध परिणाम के फलस्वरूप आत्मा चारित्र मोहनीय कर्म प्रकृति का उपशमन करती हुई आगे बढ़ती है उसे उपशम श्रेणी कहते हैं ।

(26) क्षपक श्रेणी : आत्मा अपने विशुद्ध परिणाम के द्वारा आगे बढ़ती हुई मोहनीय आदि घाती कर्मों का संपूर्ण क्षय करती है, उसे क्षपक श्रेणी कहते हैं ।

इस प्रकार ग्रंथकार महर्षि प्रस्तुत ग्रंथ में इन 26 विषयों पर स्पष्टीकरण करेंगे ।

शिष्य को सम्यग् बोध प्रदान करना, यह ग्रंथकार का अनंतर प्रयोजन है और सम्यग् बोध प्राप्त करना यह श्रोताओं का अनंतर प्रयोजन है । गुरु-शिष्य का परंपरा से प्रयोजन तो मोक्षफल प्राप्त करना ही है ।

वन्नचउतेयकम्मागुरुलहु निमिणोवघाय भयकुच्छा ।
मिच्छकसायावरणा विग्घं धुवबंधि सगचत्ता ।।2।।

–: शब्दार्थ :–

वन्नचउ=वर्णचतुष्क,
तेय=तैजस शरीर,
कम्मा=कामंण शरीर,
अगुरुलहु=अगुरुलघु नामकर्म,
निमिण=निर्माण नामकर्म,
उवघाय=उपघात नामकर्म,
भय=भय मोहनीय,
कुच्छा=जुगुप्सा मोहनीय,
मिच्छ=मिथ्यात्व मोहनीय,
कसाया=कषाय,
आवरणा=आवरण-ज्ञानावरण पाँच व दर्शनावरण-नौ कुल चौदह,
विग्घं=पाँच अन्तराय,
धुवबंधि=ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ,
सगचत्ता=सैंतालीस ।

भावार्थ :–वर्ण चतुष्क अर्थात् वर्ण, गंध, रस और स्पर्श, 5. तैजस शरीर, 6. कार्मण शरीर, 7. अगुरुलघु नाम, 8. निमणि, 9. उपघात, 10. भय, 11. जुगुप्सा, 12. मिथ्यात्व मोहनीय, 13. से 28. सोलह कषाय, 29. से 33. पाँच ज्ञानावरणीय, 34 से 42 नौ दर्शनावरणीय, 43 से 47 पाँच अंतराय - ये 47 प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी कहलाती हैं । अर्थात् जिस गुणस्थानक तक इनका बंध कहा गया है, उस गुणस्थानक तक इन प्रकृतियों का बंध अवश्य होता रहता है ।

विवेचन :–तैजस और कार्मण शरीर का संबंध अनादिकाल से है । भवांतर में जाते समय भी ये दो शरीर आत्मा के साथ अवश्य होते हैं, अतः ये दोनों प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी हैं ।

औदारिक अथवा वैक्रिय में से किसी एक शरीर का बंध होने पर वर्ण, गंध, रस और स्पर्श नामकर्म का भी अवश्य बंध होता है । औदारिक और वैक्रिय शरीर का निर्माण उनके योग्य पुद्गलाँ से होता है, अतः औदारिक व वैक्रिय शरीर के साथ निर्माण नाम कर्म का भी बंध अवश्य होता है ।

औदारिक और वैक्रिय शरीर अगुरुलघु रूप होते हैं, अतः अगुरुलघु प्रकृति का बंध भी अवश्य होता है ।

नाम कर्म की इन नौ प्रकृतियों का बंध आठवें गुणस्थानक के चरम समय तक होता है ।

भय और जुगुप्सा की विरोधी प्रकृति नहीं है, अतः इन दोनों का बंध आठवें गुणस्थानक के चरम समय तक अवश्य होता है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक तक मिथ्यात्व मोहनीय का बंध अवश्य होता है, अतः वह ध्रुवबंधी है ।

अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय और संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ का बंध उनके उदय रूप कारण होने तक अवश्य होता है, अतः ये सभी ध्रुवबंधी हैं ।

ज्ञानावरणीय की पाँच और दर्शनावरणीय की नौ इन चौदह प्रकृतियों की कोई विरोधी प्रकृति नहीं है, अतः इन प्रकृतियों का बंध, बंधविच्छेद होने के स्थान तक अवश्य होता रहता है ।

–मिथ्यात्व मोहनीय का पहले गुणस्थानक तक ।

–अनंतानुबंधी चार एवं थीणद्धित्रिक दूसरे गुणस्थानक तक ।

–अप्रत्याख्यानीय चतुष्क चौथे गुणस्थानक तक ।

प्रत्याख्यानीय चतुष्क पाँचवें गुणस्थानक तक ।

संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ का नौवें गुणस्थानक तक दूसरे, तीसरे, चौथे व पाँचवें भाग तक ।

भय, जुगुप्सा का आठवें गुणस्थानक तक ।

नामकर्म की 9 प्रकृतियों का आठवें गुणस्थानक तक । निद्रा द्विक का

आठवें गुणस्थानक के पहले भाग तक तथा ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4 तथा अंतराय की 5 प्रकृतियों का 10 वें गुणस्थानक तक सतत बंध होता रहता है, इस कारण वे ध्रुवबंधी कहलाती हैं ।

तणुवंगागिइसंघयण जाइगइखगइपुव्विजिणुसासं ।
उज्जोयायवपरघा तसवीसा गोय वयणियं ।।3।।

हासाइजुयलदुगवेय आउ तेवुत्तरी अधुवबंधा ।
भंगा अणाइसाई अणंतसंत्तुत्तरा चउरो ।।4।।

–: शब्दार्थ :–

तणु=शरीर, (औदारिक, वैक्रिय, आहारक),
उवंगा=तीन अंगोपांग,
आगिइ=छह संस्थान,
संघयण=छह संहनन,
जाइ=पाँच जाति,
गइ=चार गति,
खगइ=दो विहायोगति,
पुव्वि=चार आनुपूर्वी,
जिण=जिन नामकर्म,
उसासं=श्वासोच्छ्वास नामकर्म,
उज्जोय=उद्योत नामकर्म,
आयव=आतप नामकर्म,
परघा=पराघात नामकर्म,
तसवीसा=त्रसादि बीस (त्रस दशक और स्थावर दशक),
गोय=दो गोत्र,
वयणियं=दो वेदनीय,
हासाइ=हास्यादिक,
जुयलदुग=दो युगल,
वेय=तीन वेद,
आउ=चार आयुकर्म,
तेवुत्तरी=तिहत्तर,
अधुवबंधा=अध्रुवबंधी,
भंगा=भंग,
अणाइसाई=अनादि और सादि,
अणंतसंत्तुत्तरा=अनन्त और सांत उत्तर पद से सहित,
चउरो=चार भंग ।

भावार्थ :–तीन शरीर, तीन अंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, पाँच जाति, चार गति, दो विहायोगति, चार आनूपूर्वी, तीर्थंकर नामकर्म, श्वासोच्छ्वास नामकर्म, उद्योत, आतप, पराघात, त्रसादि बीस, दो गोत्र, दो वेदनीय, हास्यादि दो युगल, तीन वेद, चार आयु, ये तिहत्तर प्रकृतियाँ

अध्रुवबंधिनी हैं । इनके अनादि और सादि अनन्त और सान्त पद से सहित होने से चार भंग होते हैं ।

विवेचन :–आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अंतराय कर्म की तो सभी प्रकृतियाँ ध्रुव बंधी हैं ।

अब इन दो गाथाओं में 5 कर्मों की 73 अध्रुव बंधी प्रकृतियों का निर्देश करते हैं ।

(1) वेदनीय की दो - साता व असाता ।

(2) मोहनीय की सात - हास्य, रति, अरति, शोक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ।

(3) आयुष्य की चार - देवायु, मनुष्यायु, नरकायु व तिर्यंचायु ।

(4) गोत्र कर्म की दो - उच्च गोत्र और नीच गोत्र ।

(5) नामकर्म की अड्डावन - तीन शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक) तीन अंगोपांग, छह संस्थान, छह संघयण, पांच जाति, चार गति, दो विहायोगति, चार आनुपूर्वी, त्रस दशक और स्थावर दशक ।

इन 73 प्रकृतियों का बंध कभी होता है, कभी नहीं होता है, इस कारण उन्हें अध्रुवबंधी कहते है ।

अध्रुवबंधी के हेतु : औदारिक, वैक्रिय व आहारक आदि तीन शरीर परस्पर विरोधी होने से एक के बंध समय में दूसरे शरीर का बंध नहीं होता है, इसी प्रकार उस शरीर के अंगोपांग का भी बंध नहीं होता है, इसलिए ये छह प्रकृतियाँ अध्रुवबंधी हैं ।

–छह संस्थान व छह संघयण, पाँच जाति, चार आनुपूर्वी, चार गति, दो विहायोगति, दस त्रस दशक व स्थावर दशक ये सभी प्रकृतियाँ परस्पर विरोधी होने से एक समय में एक ही संस्थान आदि का बंध होने से अध्रुवबंधी हैं ।

–आतप नाम कर्म प्रकृति भी बादर पृथ्वीकाय प्रायोग्य होने से अन्य एकेन्द्रिय के साथ उसका बंध नहीं होता है, अतः अध्रुवबंधी है ।

–उद्योतनाम कर्म तिर्यंच प्रायोग्य होने से अन्य गति के साथ उसका बंध नहीं होता है ।

–पराघात और उच्छ्वास नाम कर्म का बंध पर्याप्त प्रायोग्य कर्म

प्रकृति के साथ ही होता है, अपर्याप्त प्रायोग्य कर्म प्रकृति के साथ बंध नहीं होता है ।

–तीर्थंकर नाम कर्म का बंध सम्यक्त्व की उपस्थिति में ही होता है, और सम्यक्त्व के होने पर भी सभी को नहीं होता है । तीर्थंकर बनने की योग्यता भी हर आत्मा में नहीं होती है, अतः तीर्थंकर नाम कर्म प्रकृति भी अध्रुवबंधी है ।

–आहारक द्विक का भी बंध अप्रमत्त संयमी आत्मा को कभी होता है, कभी नहीं होता है, अतः अध्रुवबंधी है ।

–साता-असाता, ऊँच गोत्र-नीच गोत्र तथा चार आयुष्य आदि प्रकृतियाँ भी परस्पर विरोधी होने से उन सबका एक साथ में बंध नहीं होता है, अतः अध्रुव बंधी हैं । हास्य-रति और शोक-अरति ये दो युगल भी परस्पर विरोधी हैं ! हास्यरति का बंध होगा तो शोक-अरति का बंध नहीं होगा, अतः ये चार अध्रुवबंधी हैं ।

–तीन वेद में से भी एक समय में एक ही वेद का बंध होने से अध्रुव-बंधी है ।

इस प्रकार बंधयोग्य 120 प्रकृतियों में 47 ध्रुवबंधी व 73 अध्रुवबंधी है ।

बंध-उदय की चतुर्भंगी

(1) अनादि अनंत : जिस कर्म प्रकृति का बंध व उदय अनादि काल से निराबाध गति से चला आ रहा हो, बीच में कभी भी विच्छिन्न नहीं हुआ हो, ऐसे बंध-उदय को अनादि-अनंत कहते हैं ।

उदा. अभव्य आत्मा को मिथ्यात्व का बंध व उदय अनादि-अनंत है ।

(2) अनादि-सांत : जिस कर्म प्रकृत्ति का बंध अनादि से चला आ रहा हो, परंतु बाद में समाप्त हो जाता हो तो उसे अनादि सांत कहते हैं ।

सम्यक्त्व पा रही भव्यात्मा को अनादि काल से मिथ्यात्व का बंध था, परंतु सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने से मिथ्यात्व का बंध रुक गया, अतः वह बंध अनादि सांत हो गया ।

(3) सादि-अनंत : जिसका प्रारंभ हो परंतु कभी अंत नहीं हो, उसे सादि अनंत कहंते हैं कर्म के बंध उदय में यह भंग नहीं घटता है, क्योंकि

जिसका प्रारंभ होता है, वह कभी अनंत नहीं होता है, उसका अंत होता ही है ।

(4) सादि-सांत : जिस बंध या उदय का प्रारंभ हो और अंत भी हो उसे सादि-सांत कहते हैं । सम्यक्त्व से पतित हुई आत्मा मिथ्यात्व का बंध करती है, परंतु वह आत्मा जब पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करेगी, तब मिथ्यात्व का अंत आएगा ही, अतः उसे मिथ्यात्व का बंध सादि-सांत होगा ।

शाता आदि अध्रुव बंधी प्रकृतियाँ सादि-सांत ही होती हैं उनके बंध का प्रारंभ हुआ तो सादि कहलाएंगी और जब उस प्रकृति का बंध पूरा हो जाएगा तो सांत हो जाएगी ।

बंध की तरह उदय और सत्ता में भी यह चतुर्भंगी होती है ।

पढमबिया धुवउदइसु धुवबंधिसु तइअवज्जभंगतिगं ।
मिच्छम्मि तिन्नि भंगा दुहावि अधुवा तुरिअभंगा ।।5।।

—: शब्दार्थ :—

पढमबिया=पहला और दूसरा भंग,	**तिन्नि**=तीन
धुवउदइसु=ध्रुवोदयी प्रकृतियों में,	**भंगा**=भंग
धुवबंधिसु=ध्रुवबन्धी प्रकृतियों में,	**दुहावि**=दोनों प्रकार की,
तइअवज्ज=तीसरे भंग के सिवाय,	**अधुवा**=अध्रुवबंधिनी और
भंगतिगं=तीन भंग होते हैं,	अध्रुवोदयी में
मिच्छम्मि=मिथ्यात्व में,	**तुरिअ भंगा**=चौथा भंग ।

भावार्थ :—ध्रुवोदयी प्रकृतियों में पहला और दूसरा भंग होता है । ध्रुव-बन्धिनी प्रकृतियों में तीसरे भंग के अलावा तीन भंग तथा मिथ्यात्व में भी तीन भंग होते हैं । दोनों प्रकार की अध्रुव प्रकृतियों में चौथा भंग होता है ।

विवेचन :—ध्रुवोदयी प्रकृति में अनादिअनन्त और अनादि-सांत ये दो भंग घटते हैं । अभव्य आत्मा को ध्रुवोदवी 27 प्रकृतियों का सदा उदय रहता हैं, अतः उसकी अपेक्षा अनादि-अनंत भंग सिद्ध होता है ।

अनादि-सांत भंग भव्यात्मा में घट सकता है । जो भव्यात्मा क्षपक श्रेणी पर चढ़ती है, तब 12 वें गुणस्थानक के चरम समय में 14 प्रकृतियाँ

(ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4 और अंतराय की 5) के उदय को नष्ट करती है, अतः उसकी अपेक्षा अनादि-सांत भंग सिद्ध होता है ।

–ध्रुवबंधी प्रकृतियों में सादि-अनंत को छोड तीन भंग घटते हैं ।

–अभव्य जीव की अपेक्षा ध्रुवबंधी 47 प्रकृतियों का बंध अनादि-अनंत है, क्योंकि वे जीव अनादि काल से इन 47 प्रकृतियों का बंध करते आ रहे हैं और अनंत काल तक बंध करनेवाले हैं ।

–इस भवचक्र में पहली बार ही सम्यक्त्व पानेवाली भव्यात्मा की अपेक्षा ध्रुवबंधी प्रकृतियों में अनादि-सांत भंग घटता है ।

जब आत्मा पहली बार सम्यक्त्व प्राप्त करती है, तब वह मिथ्यात्व के बंध का विच्छेद करती है, अतः उसकी अपेक्षा अनादि-सांत भंग घटता है ।

–जो आत्मा सम्यक्त्व प्राप्त कर पुनः सम्यक्त्व से पतित होकर मिथ्यात्व का बंध करती है, वह आत्मा भविष्य में पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर मोक्ष में जाती है, अतः ऐसी आत्मा की अपेक्षा सादि-सांत भंग घटता है ।

मिथ्यात्व का विपाकोदय अभव्य की अपेक्षा अनादि अनंत एवं भव्य की अपेक्षा अनादि सांत है । तथा सम्यक्त्व पतित की अपेक्षा सादि-सांत है ।

अध्रुव बंधी प्रकृतियों का बंध हमेशा नहीं होता है, अतः उसमें अनादि अनंत व अनादि सांत भंग नहीं घटता है, बल्कि सादि-सांत भंग ही घटता है, क्योंकि उनके बंध का प्रारंभ भी है और अंत भी ।

अध्रुवोदयी प्रकृति का विपाकोदय भी सादि-सांत ही होता है । क्योंकि उसके उदय का प्रारंभ भी होता है और अंत भी ।

ध्रुवबंधी-अध्रुवबंधी में भंग

प्रकृति	अनादि अनंत	अनादि सांत	सादि अनंत	सादिसांत	कुल
ध्रुवबंधी-47	47	47		47	141
अध्रुवबंधी-73				73	+73
कुल-	–47	+47		+120	=214

ध्रुवोदयी-अध्रुवोदयी में भंग

प्रकृति	अनादि अनंत	अनादि सांत	सादि अनंत	सादिसांत	कुल
ध्रुवोदयी-26	26	26			52
ध्रुवोदयी मिथ्यात्व	1	1		1	3
अध्रुवोदयी-95	–	–		95	95
कुल-	27	+27		+96	=150

निमिण थिर अथिर अगुरुय, सुहअसुहं तेय कम्म चउवन्ना ।
नाणंतराय दंसण, मिच्छं धुवउदय सगवीसा ।।6।।

–: शब्दार्थ :–

निमिण=निर्माण नामकर्म,
थिर=स्थिर नामकर्म,
अथिर=अस्थिर नामकर्म,
अगुरुय=अगुरुलघु नामकर्म,
सुह=शुभ नामकर्म,
असुहं=अशुभ नामकर्म,
तेय=तैजस शरीर,
कम्म=कार्मण शरीर,
चउवन्ना=वर्ण चतुष्क,
नाणंतराय=ज्ञानावरण अन्तराय कर्म के भेद
दंसण=चार दर्शनावरण,
मिच्छं=मिथ्यात्व मोहनीय,
धुवउदय=ध्रुवोदयी
सगवीसा=सत्ताईस

भावार्थ :–निर्माण, स्थिर, अस्थिर, अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तैजस कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, पाँच ज्ञानावरण, पाँच अंतराय, चार दर्शनावरण और मिथ्यात्व मोहनीय, ये ध्रुवोदयी सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ।

विवेचन :–आठ कर्मों की उदय योग्य 122 प्रकृतियाँ हैं–

ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयुष्य की 4, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयुष्य की 4, नाम की 67, गोत्र की 2 तथा अंतराय की 5 प्रकृतियाँ हैं ।

इनमें 27 प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं–

पाँचवाँ कर्मग्रंथ (भाग-5)

(1) ज्ञानावरणीय की 5 – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव व केवल ज्ञानावरण ।

(2) दर्शनावरणीय की 4 – चक्षु, अचक्षु, अवधि व केवल दर्शनावरण ।

(3) मोहनीय की 1 – मिथ्यात्व ।

(4) नामकर्म की 12 – निर्माण, स्थिर, अस्थिर, अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श ।

(5) अंतराय कर्म की 5 – दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यांतराय ।

ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4 और अंतराय की 5 अर्थात् इन 14 प्रकृतियों का विपाकोदय 12 वें गुणस्थानक तक सतत रहता है ।

नामकर्म की 12 प्रकृतियों का विपाकोदय तेरहवें गुणस्थानक तक रहता है ।

–मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय मिथ्यात्व गुणस्थानक तक रहता है । इस प्रकार 27 प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं ।

नाम कर्म की स्थिर-अस्थिर तथा शुभ-अशुभ प्रकृतियाँ परस्पर विरोधी दिखती हैं । वे प्रकृतियाँ बंध की अपेक्षा विरोधी हैं, उदय की अपेक्षा नहीं, क्योंकि शुभ, अशुभ दोनों का उदय एक साथ में हो सकता है । इसी प्रकार शरीर में हड्डी आदि स्थिर और रक्त आदि अस्थिर वस्तुएँ होती हैं, अतः स्थिर-अस्थिर दोनों का उदय एक साथ हो सकता है ।

थिर-सुभियर विणु अधुवबंधी मिच्छ विणु मोहधुवबंधी ।
निद्दोवघाय मोसं सम्मं पणनवइ अधुवुदया ।।7।।

–: शब्दार्थ :–

थिर-सुभियर=स्थिर, शुभ तथा उनके इतर नाम कर्म,	**निद्दा**=पाँच निद्रायें,
विणु=बिना,	**उवघाय**=उपघात,
अधुवबंधी=अधुवबंधी प्रकृति,	**मीसं**=मिश्र मोहनीय,
मिच्छ विणु=मिथ्यात्व के अलावा,	**सम्मं**=सम्यक्त्व मोहनीय,
मोहधुवबंधी=मोहनीय कर्म की शेष ध्रुवबंधिनी प्रकृतियाँ,	**पणनवइ**=पंचानवे,
	अधुवुदया=अध्रुवोदया ।

भावार्थ :–स्थिर, शुभ और उनसे इतर अस्थिर और अशुभ के सिवाय शेष अध्रुवबन्धिनी (69) प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व के बिना मोहनीय कर्म की ध्रुवबन्धिनी (18) प्रकृतियां, पांच निद्रा, उपघात, मिश्र व सम्यक्त्व मोहनीय कुल ये 95 प्रकृतियाँ अध्रुवोदया है ।

विवेचन :–उदय योग्य 122 कर्मप्रकृतियों में से 27 प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं, जब कि शेष 95 प्रकृतियाँ अध्रुवोदयी हैं ।

पहले जो अध्रुवबंधी 73 प्रकृतियाँ बतलाई हैं, उनमें स्थिर-अस्थिर, शुभ तथा अशुभ इन चार प्रकृतियों को छोड़ शेष 69 प्रकृतियाँ अध्रुवोदयी हैं ।

इन 69 प्रकृतियों में उच्छ्वास, उद्योत, आतप और पराघात नाम-कर्म की प्रकृतियों का उदय लब्धिपर्याप्तअवस्था में ही होता है, लब्धि अपर्याप्तअवस्था में नहीं, अतः ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं, तीर्थंकर नामकर्म का भी उदय केवली तीर्थंकर परमात्मा को ही होता है, अन्य किसी को नहीं, इस कारण ये अध्रुवोदयी हैं ।

मोहनीय कर्म की ध्रुवबंधी 19 प्रकृतियों में मिथ्यात्व को छोड़ शेष 18 प्रकृतियाँ अध्रुवोदयी हैं । क्योंकि वे उदय में परस्पर विरोधी हैं ।

16 कषाय और भय-जुगुप्सा उदय में परस्पर विरोधी हैं ।

दर्शनावरणीय कर्म की पाँच निद्राएँ अध्रुवोदयी हैं, क्योंकि ये निद्राएँ परस्पर विरोधी हैं । एक समय में एक ही निद्रा का उदय होता है ।

मिश्र मोहनीय प्रकृति भी अध्रुवोदयी है, क्योंकि उसके विरोधी समकित मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय हैं ।

मिथ्यात्व मोहनीय अध्रुवोदयी नहीं है, क्योंकि इसका उदय मिथ्यात्व मोहनीय गुणस्थानक में सतत रहता है ।

तसवन्नवीस सगतेय-कम्म धुवबंधि सेस वेयतिगं ।
आगिइतिग वेयणियं दुजुयल सगउरल सासचऊ ।।8।।
खगइतिरिदुग नीयं धुवसंता सम्म मीस मणुयदुगं ।
विउविक्कार जिणाऊ हारसगुच्चा अधुवसंता ।।9।।

–: शब्दार्थ :–

तसवन्नवीस=त्रस आदि बीस व वर्ण आदि बीस प्रकृतियाँ,
सगतेयकम्म=तैजस कार्मण सप्तक,
धुवबंधि=ध्रुवबंधिनी,
सेस=बाकी की,
वेयतिंग=वेदत्रिक,
आगिइतिग=आकृतित्रिक-छह संस्थान, छह संहनन और पाँच जाति,
वेयणियं=वेदनीय,
दुजुयल=दो युगल,
सगउरल=औदारिक-सप्तक,
सासचऊ=श्वासचतुष्क,
खगईतिरिदुग=खतिद्विक और तिर्यंचद्विक,
नीयं=नीच गोत्र,
धुवसंता=ध्रुवसत्ता,
सम्म=सम्यक्त्व मोहनीय,
मीस=मिश्र मोहनीय,
मणुयदुगं=मनुष्यद्विक,
विउविक्कार=वैक्रिय एकादश,
जिण=जिन नामकर्म,
आऊ=चार आयु,
हारसग=आहारक सप्तक,
उच्चा=उच्चगोत्र,
अधुवसंता=अध्रुवसत्ता।

भावार्थ :–त्रसवीशक और वर्णवीशक, तैजस-कार्मण सप्तक, बाकी की ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ, तीन वेद, आकृति त्रिक, वेदनीय, दो युगल, औदारिक सप्तक, उच्छ्वास चतुष्क तथा–

विहायोगतिद्विक, तिर्यंचद्विक, नीच गोत्र ये सब ध्रुवसत्ता प्रकृतियाँ हैं। सम्यक्त्व, मिश्र, मनुष्यद्विक, वैक्रिय एकादश, तीर्थंकर नामकर्म, चार आयु, आहारक-सप्तक और उच्च गोत्र ये अध्रुव सत्ता प्रकृतियाँ जानना चाहिए।

विवेचन :–बंधयोग्य 120 प्रकृतियाँ हैं, उदय योग्य 122 हैं जबकि सत्ता योग्य 158 प्रकृतियाँ हैं-जो निम्नानुसार हैं–

ज्ञानावरणीय 5, दर्शनावरणीय 9, वेदनीय 2, मोहनीय 28, आयुष्य 4, नाम 103, गोत्र 2, अंतराय 5, = 158.

158 प्रकृतियों के निर्देश में कुछ संज्ञाओं का प्रयोग किया है–

1. त्रसवीशक–त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यश (त्रसदशक) तथा स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अपयश (स्थावर दशक)।

2. वर्ण वीशक : पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श ।

3. तैजस कार्मण सप्तक : तैजस शरीर, कार्मण शरीर, तैजस तैजस बंधन, तैजस कार्मण बंधन, कार्मण कार्मण बंधन, तैजस संघातन, कार्मण संघातन !

4. आकृतित्रिक : छह संस्थान, छह संघयण और 5 जाति (एकेन्द्रिय आदि पाँच) ।

5. युगलद्विक : हास्य-रति का युगल; शोक, अरति का युगल ।

6. औदारिक सप्तक : औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, औदारिक संघातन, औदारिक बंधन, औदारिक तैजस बंधन, औदारिक कार्मण बंधन, औदारिक-तैजस-कार्मण बंधन ।

7. उच्छ्वास चतुष्क : उच्छ्वास, आतप, उद्योत, पराघात ।

8. खगतिद्विक : शुभ विहायोगति, अशुभ विहायोगति ।

9. तिर्यंचद्विक : तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी ।

10. मनुष्यद्विक : मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ।

11. वैक्रिय एकादश : देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, वैक्रिय संघात, वैक्रिय वैक्रिय बंधन, वैक्रिय तैजस बंधन, वैक्रिय कार्मण बंधन, वैक्रिय-तैजस-कार्मण बंधन ।

12. आहारक सप्तक : आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक संघातन, आहारक-आहारक बंधन, आहारक-तैजस बंधन, आहारक-कार्मण बंधन, आहारक तैजस कार्मण बंधन ।

ज्ञानावरणीय की 5,

दर्शनावरणीय की 9,

वेदनीय की 2,

मोहनीय की 26 (16 कषाय, 9 नोकषाय तथा मिथ्यात्व ।)

नामकर्म की 82 (तिर्यंचगति, 5 जाति, 3 शरीर, औदारिक, 7 बंधन 3 संघातन, 6 संघयण, 6 संस्थान, 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श, तिर्यंचानुपूर्वी, 2 विहायोगति, 7 प्रत्येक, 10 त्रसादि 10 स्थावर आदि ।

गोत्र कर्म की 1

अंतराय कर्म की 5

कुल 130 प्रकृतियों की ध्रुव सत्ता होती है । सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति

हो तब तक उनकी सत्ता हर जीव को अवश्य होती है, शेष 28 प्रकृतियों की अध्रुव सत्ता है ।

मोहनीय की 2 (समकित मोहनीय तथा मिश्र मोहनीय ।)

आयुष्य की 4 (मनुष्य, देव, नरक और तिर्यंच आयुष्य ।)

नामकर्म की 21 (मनुष्य द्विक, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रिय सप्तक, आहारक सप्तक तथा जिन नाम)

गोत्र कर्म की 1 इन 28 प्रकृतियों की सत्ता सम्यक्त्व आदि गुणों से रहित जीवों में कभी होती है कभी नहीं होती है, अतः उनकी अध्रुवसत्ता कहलाती है ।

समकित मोहनीय और मिश्र मोहनीय की सत्ता अभव्य जीवों को नहीं होती है । भव्यों को भी कई को होती है, कई को नहीं होती है ।

तेउकाय-वायुकाय के जीव मनुष्य आयु का बंध नहीं करते हैं, अतः उन्हे मनुष्यद्विक की सत्ता नहीं होती है । अन्य जीवों को सत्ता होती है, अतः उनकी अध्रुव सत्ता है ।

देवद्विक, नरकद्विक तथा वैक्रिय सप्तक-इन ग्यारह प्रकृतियों की सत्ता अनादि काल से एकेन्द्रिय अवस्था में रहे जीवों को नहीं होती है । क्योंकि इन प्रकृतियों का बंध पंचेन्द्रिय जीव ही कर सकते हैं ।

तीर्थंकर नाम कर्म का बंध सम्यग्दृष्टि कुछ जीव ही कर सकते हैं, अतः अध्रुवसत्ता है ।

चारों प्रकार के आयुष्य में से एक जीव को एक या दो आयुष्य ही सत्ता में होते हैं, अतः उनकी अध्रुव सत्ता है ।

आहारक सप्तक का बंध अप्रमत्त संयत ही कर सकते हैं, अतः उसकी सत्ता कई को होती है, कई को नहीं !

अनादि एकेन्द्रिय जीव उच्च गोत्र का बंध नहीं करते हैं, अतः उनकी सत्ता भी अध्रुव ही होती है ।

ध्रुव सत्ता-अध्रुव सत्ता में भंग :–

ध्रुव सत्ताक 130 में से अनंतानुबंधी 4 की सत्ता भव्य की अपेक्षा अनादि-अनंत व भव्य की अपेक्षा अनादि सांत है ।

शेष 126 प्रकृतियों की सत्ता अभव्य की अपेक्षा अनादि अनंत व भव्य की अपेक्षा अनादि सांत है ।

अध्रुवसत्ताक 28 की सत्ता सादि-सांत है ।

पढमतिगुणेसु मिच्छं नियमा अजयाइअट्ठगे भज्जं ।
सासाणे खलु सम्मं संतं मिच्छाइदसगे वा ।।10।।
सासणमीसेसु धुवं मीसं मिच्छाइनवसु भयणाए ।
आइदुगे अण नियमा भइया मीसाइनवगम्मि ।।11।।
आहारसत्तगं वा सव्वगुणे बितिगुणे विणा तित्थं ।
नोभयसंते मिच्छो अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ।।12।।

–: शब्दार्थ :–

पढमतिगुणेसु=पहले तीन गुणस्थानों में,
मिच्छं=मिथ्यात्व,
नियमा=निश्चित रूप से,
अजयाइ=अविरति आदि,
अट्ठगे=आठ गुणस्थानों में,
भज्जं=भजना से (विकल्प से),
सासाणे=सासादन गुणस्थान में,
खलु=निश्चय से,
सम्मं=सम्यक्त्व मोहनीय,
संतं=विद्यमान होती है,
मिच्छाइदसगे=मिथ्यात्व आदि दस गुणस्थानों में,
वा=विकल्प से,
सासणमीसेसु=सासादन और मिश्र गुणस्थान में,
धुवं=नित्य,
मीसं=मिश्र मोहनीय,
मिच्छाइनवसु=मिथ्यात्व आदि नौ गुणस्थानो में,
भयणाए=विकल्प से,
आइदुगे=आदि के दो गुणस्थानों में,
अण=अनंतानुबंधी,
नियमा=निश्चय से,
भइया=विकल्प से,
मीसाइनवगम्मि=मिश्रादि नौ गुणस्थानों में,
आहारसत्तगं=आहारक सप्तक,
सव्वगुणे=सभी गुणस्थानों में,
वा=विकल्प से,
बितिगुणे=दूसरे तीसरे गुणस्थान में,
विणा=बिना,
तित्थं=तीर्थंकर नामकर्म,
न=नहीं होता है,
उभयसंते=दोनों की सत्ता,
मिच्छो=मिथ्यात्वी,
अंतमुहुत्तं=अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त,
भवे=होती है,
तित्थे=तीर्थंकर नामकर्म के होने पर भी ।

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

भावार्थ :–पहले तीन गुणस्थानों में मिथ्यात्व मोहनीय की सत्ता अवश्य होती है और अविरति आदि आठ गुणस्थानों में भजनीय है, सासादन गुणस्थान में सम्यक्त्व मोहनीय की सत्ता निश्चित रूप से होती है और मिथ्यात्व आदि दस गुणस्थानों में विकल्प से होती है ।

सासादन और मिश्र गुणस्थान में मिश्र प्रकृति की सत्ता निश्चित रूप से रहती है । मिथ्यात्व आदि नौ गुणस्थानों में विकल्प से है । पहले दो गुणस्थानों में अनन्तानुबंधी कषाय की सत्ता अवश्य होती है और मिश्र आदि नौ गुणस्थानों में भजनीय है ।

आहारक सप्तक सभी गुणस्थानों में विकल्प से है । दूसरे और तीसरे गुणस्थान के सिवाय शेष गुणस्थानों में तीर्थंकर नामकर्म विकल्प से होता है । और दोनों (आहारक सप्तक व तीर्थंकर नामकर्म) की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में नहीं आता है । यदि तीर्थंकर नामकर्म की सत्तावाला कोई जीव मिथ्यात्व में आता है तो सिर्फ अन्तमुहूर्त तक के लिए आता है ।

विवेचन :–मिथ्यात्व की ध्रुव सत्ता : मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिथ्यात्व की सत्ता अवश्य होती है । मोहनीय की 28 प्रकृतियों की सत्तावाला ही सास्वादन गुणस्थान प्राप्त कर सकता है, अतः सास्वादन में भी मिथ्यात्व की सत्ता होती है ।

सम्यक्त्व से पतित होकर तीसरे गुणस्थानक में आए जीव को भी मिथ्यात्व की सत्ता अवश्य होती है । मिथ्यात्व से मिश्र गुणस्थानक पर आए जीव को भी 28 या 27 (सम्यक्त्व रहित) प्रकृति की अवश्य सत्ता होती है, अतः पहले तीन गुणस्थान में मिथ्यात्व की ध्रुवसत्ता होती है ।

8 गुणस्थानकों में मिथ्यात्व की अध्रुव सत्ता :

चौथे से ग्यारहवें तक आठ गुणस्थानकों में उपशम समकिती को मिथ्यात्व की सत्ता होती है परंतु क्षायिक समकिती को नहीं होती है अतः 8 गुण ठाणों में मिथ्यात्व की अध्रुव सत्ता कही है ।

सास्वादन में समकित मोहनीय की ध्रुव सत्ता : मोहनीय की 28 प्रकृतियों की सत्तावाला जीव ही सास्वादन गुणस्थानक में आ सकता है, अतः वहाँ भी समकित मोहनीय की सत्ता होती है ।

10 गुणस्थानकों में समकित मोहनीय की अध्रुव सत्ता : चौथे से

ग्यारहवें गुणस्थानक में उपशम समकिती को समकित मोहनीय की सत्ता होती है, परंतु क्षायिक समकिती को नहीं होती है, अतः उसकी अध्रुव सत्ता है ।

दूसरे-तीसरे गुणस्थानक में मिश्र मोहनीय की ध्रुव सत्ता : मोहनीय की 28 प्रकृतियों की सत्तावाला ही सास्वादन गुणस्थान में आ सकता है, अतः सास्वादन गुणस्थान में मिश्रमोहनीय की सत्ता अवश्य होती है ।

मिश्रमोहनीय के उदय बिना मिश्र गुणस्थानक प्राप्त नहीं होता है, अतः वहाँ मिश्रमोहनीय की सत्ता अवश्य होती है ।

नौ गुणस्थानकों में मिश्रमोहनीय की अध्रुव सत्ता : अनादि मिथ्यादृष्टि को मिश्र मोहनीय कर्म की सत्ता नहीं होती है । चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक में उपशम समकिती को मिश्र मोहनीय की सत्ता होती है परंतु क्षायिक समकिती को उसकी सत्ता नहीं होती है, अतः उसकी अध्रुव सत्ता होती है ।

पहले-दूसरे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी की ध्रुव सत्ता : अनंतानुबंधी ध्रुवबंधी होने से दो गुणस्थानक तक उसका निरंतर बंध होता रहता है, अतः दो गुणस्थानक तक उनकी ध्रुव सत्ता है ।

नौ गुणस्थानक में अनंतानुबंधी की अध्रुव सत्ता : पहले से तीसरे गुणस्थानक में आए जीव को अनंतानुबंधी की सत्ता होती है ।

चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक में मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियों की सत्तावाले जीव को अनंतानुबंधी की सत्ता होती है । परंतु क्षायिक समकिती को उसकी सत्ता नहीं होती है, अतः उसकी अध्रुव सत्ता है ।

आहारक सप्तक की अध्रुव सत्ता : सातवें गुणस्थानक में कोई अप्रमत्त-संयती आहारक द्विक का बंधकर क्षपक श्रेणी पर चढ़कर 14 वें गुणस्थानक तक जाता है तो नीचे गिरते हुए मिथ्यात्व गुणस्थानक तक भी जाता है, अतः आहारक सप्तक की सत्ता 1 से 14 गुणस्थानकों में होती है ।

आहारक सप्तक का बंध किए बिना भी कई आत्माएँ क्षपक श्रेणी पर चढ़ती हैं और नीचे भी गिरती हैं, अतः आहारक सप्तक की अध्रुव सत्ता होती है ।

तीर्थंकर नाम कर्म की सत्तावाला जीव दूसरे व तीसरे गुणस्थानक में नहीं जाता हैं अतः उन गुणस्थानकों में उसकी सत्ता नहीं होती है ।

12 गुणस्थानकों में तीर्थंकर नाम कर्म की अध्रुव सत्ता : पहले तथा

चौथे से चौदहवें गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म की सत्ता होती है । जो जीव नरक आयुष्य का बंध कर क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करता है, वह जीव अपना अन्तर्मुहूर्त आयुष्य बाकी रहने पर मिथ्यात्व गुणठाणे में आ जाता है, फिर मिथ्यात्व के साथ नरक में जाकर अन्तर्मुहूर्त बाद पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है, अतः मिथ्यात्व गुणस्थानक में भी एक अन्तर्मुहूर्त तक तीर्थंकर नाम कर्म की सत्ता रहती है ।

जो जीव तीर्थंकर नामकर्म का बंध किए बिना भी क्षपकश्रेणी पर चढ़कर 14 गुणस्थानक में जाता है, इस अपेक्षा पहले तथा चौथे से चौदहवें गुणस्थानक में तीर्थंकर नामकर्म की सत्ता होती है ।

आहारक सप्तक तथा जिन नामकर्म इन आठ प्रकृतियों की सत्तावाला जीव मिथ्यात्व गुणस्थानक को प्राप्त नहीं करता है ।

सिर्फ आहारक सप्तक की सत्तावाला या तीर्थंकर नामकर्म की सत्तावाला मिथ्यात्व गुणस्थानक प्राप्त कर सकता है ।

केवलजुयलावरणा पणनिद्दा बारसाइमकसाया ।
मिच्छं ति सव्वघाइ, चउणाणतिदसंणावरणा ।।13।।
संजलण नोकसाया विग्घं इय देसघाइय अघाई ।
पत्तेयतणुट्ठाऊ तसवीसा गोयदुग वन्ना ।।14।।

—: शब्दार्थ :—

केवलजुयल=केवलद्विक-केवलज्ञान, केवलदर्शन,
आवरणा=आवरण,
पण=पाँच,
निद्दा=निद्रायें,
बारस=बारह,
आइमकसाया=आदि की कषायें,
मिच्छं=मिथ्यात्व,
ति=इस प्रकार,
सव्वघाइ=सर्वघाति,
चउ=चार,
णाण=ज्ञान,
तिदंसण=तीन दर्शन,
आवरणा=आवरण,
संजलण=संज्वलन,
नोकसाया=नो कषायें,
विग्घं=पाँच अंतराय,
इय=ये,
देसघाइ=देशघाति,
य=और,

अघाइ=अघाति,	**तसवीसा**=त्रसवीशक,
पत्तेयतणुट्ठ=प्रत्येक आदि आठ व शरीर आदि आठ प्रकृतियाँ,	**गोयदुग**=गोत्रद्विक,
आऊ=आयु,	**वेदनीय**=द्विक,
	वन्ना=वर्णचतुष्क ।

भावार्थ :–केवलद्विक आवरण, पाँच निद्रायें, आदि की बारह कषाय और मिथ्यात्व ये सर्वघाति प्रकृतियाँ हैं । चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण तथा-संज्वलन कषाय चतुष्क, नौ नौ कषायें और पाँच अंतराय ये देशघाती प्रकृतियाँ जानना चाहिए । आठ प्रत्येक प्रकृतियां, शरीरादि अष्टक, चार आयु, त्रसवीशक, गोत्रद्विक, वेदनीयद्विक और वर्णचतुष्क ये प्रकृतियाँ अघातिनी हैं ।

विवेचन :–जो कर्म आत्मा के ज्ञान आदि मूलगुणों का घात करते हैं, उन्हें घाती कर्म कहते हैं और जो कर्म आत्मा के मूलगुणों का घात नहीं करते हैं, उन्हें अघाती कर्म कहते हैं ।

घाती कर्म के भी दो भेद हैं-सर्वघाती और देशघाती ।

(1) सर्वघाती : जो कर्म आत्मा के गुणों का पूरी तरह घात करते हैं, उन्हें सर्वघाती कहते हैं ।

(2) देशघाती : देशघाती कर्मप्रकृतियां भी आत्मगुणों का घात अवश्य करती हैं, परंतु उनके अस्तित्व में अल्पाधिक प्रमाण में आत्मगुणों का अस्तित्व रहता है, इसलिए उन्हें देशघाती कहते हैं ।

उपर्युक्त गाथाओं में सर्वघाती और देशघाती 20 प्रकृतियों का निर्देश किया है-

(1) सर्वघाती–जो कर्म आत्मा के गुणों का पूरी तरह घात करते हैं, उन्हें सर्वघाती कहते हैं ।

(2) देशघाती–देशघाती कर्म प्रकृतियाँ भी आत्मगुणों का घात अवश्य करती हैं, परंतु उनके अस्तित्व में अल्पाधिक प्रमाण में आत्मगुणों का अस्तित्व रहता है, इसलिए उन्हें देशघाती कहते हैं ।

उपर्युक्त गाथाओं में सर्वघाती और देशघाती 20 प्रकृतियों का निर्देश किया है–

(1) केवलज्ञानावरणीय कर्म : यह कर्म आत्मा के केवलज्ञान गुण को संपूर्ण रूप से ढकता है । इस कर्म के उदय में अल्प अंश में भी केवलज्ञान नहीं होता है ।

(2) केवलदर्शनावरणीय कर्म : यह कर्म आत्मा के केवलदर्शन गुण को रोकता है । अतः सर्वघाती है ।

(3) पाँच निद्राएँ : निद्रा पंचक भी इन्द्रियों से होनेवाले बोध में बाधक है, अतः सर्वघाती है ।

(4) मोहनीय की 13 प्रकृतियाँ : अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानीय और प्रत्याख्यानीय कषाय की 12 प्रकृतियाँ तथा मिथ्यात्व का उदय भी सर्वघाती है ।

अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व का उदय सम्यक्त्व में बाधक है ।

प्रत्याख्यानीय कषाय सर्वविरति में और अप्रत्याख्यानीय कषाय देशविरति में बाधक है ।

(2) देशघाती : 4 घाती कर्मों की 25 प्रकृतियाँ देशघाती हैं ।

(1) ज्ञानावरणीय की 4 मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यव ज्ञानावरण

(2) दर्शनावरणीय की 3 : चक्षु, अचक्षु तथा अवधि दर्शनावरण

(3) मोहनीय की 13 प्रकृतियाँ : संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ तथा नौ नोकषाय - हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगुंछा, स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसक वेद ।

(4) अंतराय की 5 प्रकृतियाँ : दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यांतराय ।

केवलज्ञानावरण कर्म केवलज्ञान को पूर्ण आवृत करता है । फिर भी ज्ञान का एकदेश, जिसे मतिज्ञान आदि कहा जाता है, उसे यथायोग्य रीति से मतिज्ञान आदि को आच्छादित करने के कारण उन्हें देशघाती कहा जाता है ।

केवलदर्शनावरण द्वारा केवलदर्शन पर आवरण होने पर भी उसका एकदेश अवश्य खुला रहता है, जिसे चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन व अवधिदर्शन कहते हैं । इस कारण चक्षुदर्शन आदि को ढकनेवाला कर्म देशघाती कहलाता है ।

अनंतानुबंधी क्रोध आदि बारह कषाय सम्यक्त्व, देशविरति, सर्व-विरति का घात करने के कारण सर्वघाती कहलाते हैं ।

जब कि संज्वलन कषाय और नौ नोकषाय का उदय सर्वविरति आदि में अतिचार लगाते हैं, इस कारण वे देशघाती कहलाते हैं ।

लब्धि अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद के जीव में भी कर्मग्रहण आहारग्रहण, आहारपरिणमन आदि क्रियाएँ होने से अल्प अंश में भी वीर्य गुण अवश्य होता है अतः वीर्यांतराय कर्म सर्वघाती नहीं, बल्कि देशघाती है ।

अघाती प्रकृतियाँ : बंध योग्य 120 में से 45 तथा उदय योग्य 172 में से 47 प्रकृतियाँ कम करने पर शेष रही 75 प्रकृतियाँ अघाती हैं । ये 75 प्रकृतियाँ वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म की हैं ।

1. वेदनीय की 2 – (1) साता वेदनीय और 2 असाता वेदनीय ।

2. आयुष्य की 4 – नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव आयुष्य ।

3. नामकर्म की 67 – 8 प्रत्येक प्रकृति, 5 शरीर, 3 अंगोपांग, 6 संस्थान, 6 संघयण, 5 जाति, 4 गति, 2 विहायोगति, 4 आनुपूर्वी, 10 त्रस दशक, 10 स्थावरदशक, 4 वर्ण आदि ।

4 गोत्र कर्म की 2 –उच्च और नीच गोत्र

इस प्रकार 2+4+67+2=75 प्रकृतियाँ होती हैं ।

सुरनरतिगुच्च साय तसदस तणूवंगवइरचउरंसं ।
परघासग तिरिआऊं वन्नचउ पंणिदि सुभखगइ ।।15।।
बायालपुन्नपगई अपढमसंठाणखगइसंघयणा ।
तिरियदुग असायनीयोवघाय इगविगल निरयतिगं ।।16।।
थावरदास वन्नचउक्क घाइपणयालसहिय बासोई ।
पावपयडित्ति दोसुवि वन्नाइगहा सुहा असुहा ।।17।।

–: शब्दार्थ :–

सुरनरतिग=देवत्रिक, मनुष्यत्रिक,
उच्च=उच्च गोत्र,
सायं=साता वेदनीय,
तसदस=त्रसदशक,
तणु=पाँच शरीर,
उवंग=तीन अंगोपांग,
वइर=वज्रऋषभनाराच संहनन,
चउरंसं=समचतुरस्र संस्थान,
परघासग=पराघात सप्तक,
तिरिआउं=तिर्यंचायु,
वन्नचउ=वर्ण चतुष्क,
पणिदि=पंचेन्द्रिय जाति,

सुभखगइ=शुभ विहायोगति,
बायाल=बयालीस,
पुन्नपगई=पुण्य प्रकृति,
अपढम=पहले को छोड़कर,
संठाण=संस्थान,
खगइ संघयणा=विहायोगति और संहनन,
तिरियदुग=तिर्यंचद्विक,
असाय=असाता वेदनीय,
नीय=नीच गोत्र,
उवघाय=उपघात नाम,
इगविगल=एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय,
निरयतिगं=नरकत्रिक,
थावरदस=स्थावर दशक,
वन्नचउक्क=वर्ण चतुष्क,
घाइ=घाती,
पणयाल=पैंतालीस,
सहिय=सहित, युक्त,
बासीई=बियासी,
पावपयडि=पाप प्रकृतियाँ,
ति=इस प्रकार,
दोसुवि=दोनों में,
वन्नाइगहा=वर्णादि का ग्रहण करने से,
सुहा=शुभ,
असुहा=अशुभ।

भावार्थ :–देवत्रिक, मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र, सातावेदनीय, त्रसदशक, पाँच शरीर, तीन अंगोपांग, वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान, पराघात सप्तक, तिर्यंचायु, वर्ण चतुष्क, पंचेन्द्रिय जाति, शुभ विहायोगति–

ये बयालीस पुण्य प्रकृतियाँ हैं। पहले को छोड़कर शेष पाँच संस्थान, दूसरी विहायोगति और पाँच संहनन, तिर्यंचद्विक, असातावेदनीय, नीच गोत्र, उपघात, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रिक, नरकत्रिक तथा–

स्थावर दशक, वर्णचतुष्क, पैंतालीस घाति प्रकृतियाँ, कुल मिलाकर ये बयासी पाप प्रकृतियाँ हैं। वर्ण चतुष्क को पुण्य और पाप प्रकृतियों दोनो मे ग्रहण किया है। अतः पुण्य प्रकृतियों में शुभ और पाप प्रकृतियों में अशुभ समझना चाहिए।

विवेचन :–जिस कर्मप्रकृति का विपाक आनंददायी होता है, उसे पुण्य प्रकृति कहते हैं और जिसका विपाक दुःखदायी होता है, उसे पाप प्रकृति कहते हैं।

यद्यपि बंध में कुल 120 प्रकृतियाँ हैं, जबकि पुण्य और पाप की कुल प्रकृतियाँ 42 + 82 = 124 हैं। इसका कारण है कि नाम कर्म की 4 प्रकृतियाँ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श शुभ भी हैं और अशुभ भी हैं। जब वर्ण आदि शुभ

हो तो पुण्य प्रकृति कहलाते हैं और अशुभ हों तो पाप प्रकृति कहलाते हैं ।

नामधुवबंधिनवगं दंसण पणनाणविग्ध परघायं ।
भयकुच्छमिच्छसासं जिण गुणतीसा अपरियत्ता ।।18।।

–: शब्दार्थ :–

नाम=नामकर्म की,	**भयकुच्छमिच्छ**=भय, जुगुप्सा और मिथ्यात्व,
धुवबंधिनवगं=ध्रुवबंधिनी नौ प्रकृतियाँ,	**सासं**=उच्छ्वास नामकर्म,
दंसण=दर्शनावरण,	**जिण**=तीर्थंकर नामकर्म,
पण=पाँच,	**गुणतीसा**=उनतीस,
नाण=ज्ञानावरण,	**अपरियत्ता**=अपरावर्तमान
विग्घ=अन्तराय,	
परघायं=पराघात,	

भावार्थ :–नामकर्म की ध्रुवबंधिनी नौ प्रकृतियाँ, चार दर्शनावरण, पाँच ज्ञानावरण, पाँच अंतराय, पराघात, भय, जुगुप्सा, मिथ्यात्व, उच्छ्वास और तीर्थंकर ये उनतीस प्रकृतियाँ अपरावर्तमान प्रकृतियाँ हैं ।

विवेचन :–अपरावर्तमान कर्म प्रकृतियाँ :–

किसी दूसरी प्रकृति के बंध, उदय अथवा दोनों को रोके बिना जिस प्रकृति के बंध, उदय अथवा दोनों होते हैं, उसे अपरावर्तमान प्रकृति कहते हैं ।

कुल उनतीस प्रकृतियाँ अपरावर्तमान हैं–

(1) ज्ञानावरणीय : मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञानावरण ।

(2) दर्शनावरणीय : चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण ।

(3) मोहनीय : भय, जुगुप्सा और मिथ्यात्व ।

(4) नाम कर्म : वर्ण चतुष्क, तैजस, कार्मण शरीर, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, पराघात, उच्छ्वास तीर्थंकर ।

(5) अंतराय : दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यांतराय ।

16 कषाय तथा 5 निद्रा रूप 21 प्रकृतियाँ अपने बंध के समय अपनी सजातीय प्रकृति के बंध को नहीं रोकती हैं इस कारण वे बंध में अपरावर्तमान

हैं । तथा उदय में परस्पर विरोधी होने से दूसरी सजातीय प्रकृति के उदय को रोककर उदय में आती हैं, इस कारण उदय में परावर्तमान हैं । इस प्रकार बंध में 29 + 21 = 50 अपरावर्तमान हैं ।

स्थिर-अस्थिर, तथा शुभ-अशुभ ये चार प्रकृतियाँ बंध में परस्पर विरोधी होने से सजातीय प्रकृति के बंध को रोककर अपना बंध प्रारंभ करती हैं इस कारण वे बंध में परावर्तमान हैं । अपने उदय समय में वे सजातीय प्रकृति के उदय को रोकती नहीं हैं, इस कारण वे अपरावर्तमान हैं, अतः उदय में 29 + 4 = 33 अपरावर्तमान हैं ।

तणुअट्ठवेय दुजुयल कसाय उज्जोयगोयदुग निद्दा ।
तसवीसाउ परित्ता खित्तविवागाऽणुपुव्वीओ ।।19।।

—: शब्दार्थ :—

तणुअट्ठ=शरीरादि अष्टक की तैंतीस प्रकृतियाँ,	**निद्दा**=पाँच निद्रायें,
वेय=तीन वेद,	**तसवीस**=त्रसवीशक,
दुजुयल=दो युगल,	**आउ**=चार आयु,
कसाय=सोलह कषाय,	**परित्ता**=परावर्तमान,
उज्जोयगोयदुग=उद्योतद्विक, गोत्रद्विक, वेदनीयद्विक,	**खित्तविवागा**=क्षेत्रविपाकी, **आणुपुव्वीओ**=चार आनुपूर्वी ।

भावार्थ :—शरीरादि अष्टक, तीन वेद, दो युगल, सोलह कषाय, उद्योतद्विक, गोत्रद्विक, वेदनीयद्विक, पाँच निद्रायें, त्रसवीशक और चार आयु ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं । चार आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी हैं ।

विवेचन :—परावर्तमान 91- प्रकृतियाँ : दूसरी प्रकृतियों के बंध-उदय या बंध-उदय दोनों को रोककर अपना बंध, उदय अथवा बंध-उदय करती हैं, उसे परावर्तमान प्रकृति कहते हैं ।

1. दर्शनावरणीय की 5 निद्राएँ : निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला तथा स्त्यानर्द्धि ।

2. वेदनीय की 2 : सातावेदनीय-असातावेदनीय ।

3. मोहनीय की 23 : अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क अप्रत्याख्यानीय

कषाय चतुष्क, प्रत्याख्यानीय कषाय चतुष्क, संज्वलव कषाय चतुष्क हास्य, रति, शोक, अरति, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद ।

4. आयुष्य की 4 : नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव आयु ।

5. नाम कर्म की 55 : 3 शरीर (औदारिक वैक्रिय, आहारक) 3 अंगोपांग, 6 संस्थान, 6 संघयण, 5 जाति, 4 गति, 2 विहायोगति, 4 आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, 10 त्रस दशक, 10 स्थावर दशक ।

6 गोत्र कर्म उच्च गोत्र-नीच गोत्र ।

इस प्रकार कुल 91 प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं ।

उनमें 16 कषाय, 5 निद्रा, स्थिर-अस्थिर तथा शुभ-अशुभ ये 25 प्रकृतियाँ कम करने पर शेष 66 प्रकृतियाँ बंध व उदय दोनों मैं परावर्तमान हैं । क्योंकि वे सभी प्रकृतियाँ बंध में परस्पर विरोधी होने से अन्य सजातीय बंध को रोककर अपना बंध प्रारंभ करती हैं ।

उदय में भी परस्पर विरोधी होने से दूसरी सजातीय प्रकृति के उदय को रोककर स्वयं उदय में आती हैं ।

इस प्रकार बंध व उदय में 66 प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं ।

16 कषाय तथा 5 निद्राएँ ये 21 प्रकृतियाँ बंध में अपरावर्तमान और उदय में परावर्तमान हैं अर्थात् उदय में 66 + 21 = 87 प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं ।

स्थिर-अस्थिर तथा शुभ-अशुभ ये चार प्रकृतियाँ उदय में अपरावर्तमान तथा बंध में परावर्तमान हैं अर्थात् बंध में 66 + 4 = 70 प्रकृतियाँ परावर्तमान है ।

कर्मविपाक :

कर्मविपाकी प्रकृतियाँ चार प्रकार की हैं –

(1) क्षेत्र विपाकी 2 जीव विपाकी 3 भव विपाकी और 4 पुद्गल विपाकी ।

1. क्षेत्र विपाकी : एक भव से दूसरे भव में जाते समय जो कर्म प्रकृति मोड़ (विग्रह) वाले क्षेत्र में अपना फल देती है । उसे क्षेत्र विपाकी कहते हैं ।

घणघाइ दुगोय जिणा तसियरतिग सुभगदुभगचउ सासं ।
जाइतिग जियविवागा आऊ चउरो भवविवागा ।।20।।

—: शब्दार्थ :—

घणघाइ=घातिकर्मों की प्रकृतियाँ,	**सासं**=उच्छ्वास,
दुगोय=गोत्रद्विक, वेदनीयद्विक,	**जाइतिग**=जातित्रिक,
जिणा=तीर्थंकर नामकर्म,	**जियविवागा**=जीवविपाकी,
तसियरतिग=त्रसत्रिक और इतर स्थावरत्रिक,	**आऊचउरो**=चार आयु,
सुभगदुभगचउ=सुभग चतुष्क, दुर्भग चतुष्क,	**भवविवागा**=भवविपाकी

भावार्थ :—सैंतालीस घाति प्रकृतियाँ, गोत्रद्विक, वेदनीयद्विक, तीर्थंकर नामकर्म, त्रसत्रिक, स्थावरत्रिक, सुभग चतुष्क, दुर्भग चतुष्क, उच्छ्वास, जातित्रिक, ये जीवविपाकी प्रकृतियाँ हैं और चार आयु भवविपाकी हैं ।

विवेचन :—ज्ञानावरणीय की 5

दर्शनावरणीय की 9

वेदनीय की 2

मोहनीय की 28

नाम की 27 (4 गति, 5 जाति, 2 विहायोगति, जिननाम, उच्छ्वास, 3 त्रसादि, 3 स्थावर आदि 4 सुभग 4 दुर्भग)

गोत्र की 2

अंतराय की 5 = ये 71 प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं । इन प्रकृतियों के फल का प्रत्यक्ष अनुभव जीव को होता है, इस कारण जीवविपाकी कहलाती हैं । उदा. ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव अज्ञानी बनता है, दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव अंध, बधिर आदि होता है ।

वेदनीय कर्म के उदय से सुखी-दुःखी होता है ।

मोहनीय कर्म के उदय से जीव के सम्यक्त्व तथा चारित्र का घात होता है ।

अंतराय कर्म के उदय से जीव को दान आदि की प्राप्ति नहीं होती है ।

भवविपाकी : परभव के आयुष्य का बंध होने पर भी जब तक जीव वर्तमान भवके आयुष्य का त्यागकर अपने योग्य भव को प्राप्त नहीं करता है, तब तक आयुष्य कर्म का उदय नहीं होता है ।

चार आयुष्य की कर्मप्रकृतियों को भवविपाकी कहते हैं ।

प्रश्न : गति नाम कर्म की देव आदि गति में ही अपना फल बताता है तो उसे भवविपाकी क्यों नहीं कहते हैं ?

उत्तर : आयुष्य कर्म का उदय विपाकोदय से ही होता है, प्रदेशोदय से नहीं ।

मनुष्य आयुष्य का उदय मनुष्य भव में ही होता है, परंतु गति नाम कर्म का भोग विपाकोदय और प्रदेशोदय दोनों से होता है । मनुष्य भव में तो मनुष्य गति नाम का विपाकोदय होता है, परंतु देव भव में भी मनुष्य गति नाम कर्म का प्रदेशोदय होता है, इस कारण गतिनाम कर्म भवविपाकी नहीं कहलाता है ।

नामधुवोदय चउतणूवघायसाहारणियर जोयतिग ।
पुग्गलविवागि बंधो पयइठिइरसपएसत्ति ।।21।।

–: शब्दार्थ :–

नामधुवोदय=नामकर्म की ध्रुवोदय बारह प्रकृतियाँ,	**जोयतिग**=उद्योतत्रिक,
चउतणु=तनुचतुष्क,	**पुग्गलविवागि**=पुद्गलविपाकी,
उवघाय=उपघात,	**बंधो**=बंध,
साहारण=साधारण,	**पयइठिह**=प्रकृति और स्थितिबंध,
इयर=इतर-प्रत्येक,	**रसपएस**=रसबंध और प्रदेशबंध,
	त्ति=इस प्रकार ।

भावार्थ :–नामकर्म की ध्रुवोदयी बारह प्रकृतियाँ, शरीर चतुष्क, उपघात, साधारण, प्रत्येक, उद्योतत्रिक ये छत्तीस प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं । प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, रसबंध और प्रदेशबंध ये बंध के चार भेद हैं ।

विवेचन :–नाम कर्म की उपर्युक्त 36 प्रकृतियाँ शरीर रूप में परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं में ही अपना फल देती हैं, अतः वे पुद्गलविपाकी हैं ।

उदा. निर्माण नाम कर्म के उदय से शरीर रूप में परिणत पुद्गल

परमाणुओं का अंग-उपांग का नियमन होता है ।

स्थिर नाम कर्म के उदय से दाँत आदि स्थिर तथा अस्थिर नाम कर्म के उदय से जीभ आदि अस्थिर होते हैं । शुभ नामकर्म के उदय से मस्तक आदि शुभ और अशुभ नाम कर्म के उदय से पैर आदि अशुभ अवयव कहलाते हैं ।

प्रश्न : चंदन आदि इष्ट पदार्थों के संयोग से रति मोहनीय और कंटक आदि अनिष्ट पदार्थों के संयोग से अरति मोहनीय का उदय होता है तो रति-अरति को पुद्‌गलविपाकी कहना चाहिए ?

उत्तर : पुद्‌गलों के संपर्क बिना भी इष्ट पदार्थों के स्मरण से रति मोहनीय व अनिष्ट पदार्थों के स्मरण से अरति मोहनीय का उदय होता है, इस कारण उन्हें पुद्‌गलविपाकी न कहकर जीवविपाकी कहा है ।

कर्मबंध के चार प्रकार :

1. प्रकृति बंध : प्रकृति अर्थात् स्वभाव ! जीव द्वारा ग्रहण किये कर्म पुद्‌गलों में भिन्न-भिन्न स्वभावों के उत्पन्न होने को प्रकृति बंध कहते हैं । उदा. ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव ज्ञान गुण को रोकना है ।

2. स्थितिबंध : कर्म का जीव के साथ रहने की कालमर्यादा को स्थिति बंध कहते हैं । उदा. किसी कर्म की 1 लाख वर्ष की स्थिति अर्थात् वह कर्म 1 लाख वर्ष तक आत्मा के साथ लगा रहेगा ।

3. रसबंध : जीव के द्वारा ग्रहण किये गये कर्मपुद्‌गलों की फल देने की न्यूनाधिक शक्ति को रसबंध कहते हैं ।

4. प्रदेश बंध : जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणुवाले कर्मस्कंधों का संबंध होना, उसे प्रदेशबंध कहते हैं ।

मूलपयडीण अट्ठसत्तछेगबंधेसु तिन्नि भूगारा ।
अप्पतरा तिय चउरो अवट्ठिया ण हु अवत्तव्वो ।।22।।

—: शब्दार्थ :—

मूलपयडीण=मूल प्रकृतियों के,	**तिन्नि**=तीन,
अट्ठसत्तछेगबंधेसु=आठ, सात, छह और एक के बंधस्थान में,	**भूगारा**=भूयस्कार बंध,
	अप्पतरा=अल्पतर बंध,

तिय=तीन,	**ण हु**=नहीं,
चउरो=चार,	**अवत्तव्वो**=अवक्तव्य बंध ।
अवट्ठिया=अवस्थित बंध,	

भावार्थ :–मूल प्रकृतियों के आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और एक प्रकृतिक बंधस्थानों में तीन भूयस्कार बंध होते हैं । अल्पतर बंध तीन और अवस्थित बंध चार होते हैं । अवक्तव्य बंध नहीं होता है ।

विवेचन :–प्रकृति बंध के चार प्रकार :

1. भूयस्कार बंध : पहले समय में कम प्रकृतियों का बंध कर दूसरे समय में उससे अधिक प्रकृतियों का बंध करे उसे भूयस्कार बंध कहते हैं ।

2. अल्पतर बंध : पहले समय में ज्यादा प्रकृतियों का बंधकर दूसरे समय में कम प्रकृतियों का बंध करे, उसे अल्पतर बंध कहते हैं ।

3. अवस्थित बंध : पहले समय में जितनी प्रकृतियों का बंध करे, उतनी ही प्रकृतियों का दूसरे समय में बंध करे, उसे अवस्थित बंध कहते हैं ।

4. अवक्तव्य बंध : एक भी कर्म को न बांधकर पुनः कर्म का बंध करे, उसे अवक्तव्य बंध कहते हैं । मूल प्रकृतियों में अवक्तव्य बंध नहीं होता है ।

मूल प्रकृतियों में भूयस्कार बंध :

कर्म की मूल 8 प्रकृतियों में भूयस्कार बंध तीन ही होते हैं–

उपशम श्रेणि से नीचे उतरते समय तीन भूयस्कार बंध होते हैं ।

1. ग्यारहवें गुणस्थान में रही आत्मा एक साता वेदनीय का ही बंध करती है, परंतु जब वह आत्मा वहाँ से गिरकर दसवें गुणस्थानक को प्राप्त करती है तो वहाँ छह कर्मों का बंध करती है-यह पहला भूयस्कार बंध हुआ ।

2. दसवें गुणस्थानक से च्युत होकर जब आत्मा नौवें आदि गुणस्थान को प्राप्त करती है, तब वहाँ सात कर्मों का बंध करती है । यह दूसरा भूयस्कार बंध हुआ ।

3. उपशम श्रेणि से नीचे गिरा जीव जब आयुष्य कर्म का बंध करता है, तब तीसरा भूयस्कार बंध होता है ।

इस प्रकार चार बंध स्थानों में एक से छह, छह से सात और सात से आठ-ये तीन भूयस्कार बंध होते हैं ।

अल्पतर बंध : भूयस्कार से उल्टा अल्पतर बंध होता है। उसके भी तीन विकल्प होते हैं –

(1) आयुष्य कर्म के बंधसमय में जीव आठ कर्मों का बंध करता है, उस बंध को पूर्ण कर जब जीव सात कर्मों का बंध करता है तो वह पहला अल्पतर बंध हुआ।

(2) नौवें गुणस्थान में सात प्रकृतियों का बंध करता हुआ जीव जब दसवें गुणस्थान में जाकर मोहनीय को छोड़ छह कर्मों का बंध करता है तो वह दूसरा अल्पतर बंध हुआ।

(3) दसवें गुणस्थान में छह कर्मों का बंध करता हुआ जीव जब उपशम श्रेणि द्वारा ग्यारहवें और क्षपक श्रेणि द्वारा बारहवें गुणस्थान में जाता है, तब छह में से सिर्फ एक ही साता वेदनीय का बंध करता है-यह तीसरा अल्पतर बंध हुआ।

अवस्थित बंध :

1. पहले समय में आठ कर्मों को बाँधकर दूसरे समय में भी आठ को बाँधे, वह पहला अवस्थित बंध हुआ।

2. पहले समय में सात प्रकृतियों का बंध कर दूसरे समय में भी सात का बंध करे तो वह दूसरा अवस्थित बंध हुआ।

3. पहले समय में छह प्रकृतियों का बंधकर दूसरे समय में भी छह प्रकृतियों का बंध करे, वह तीसरा अवस्थित बंध हुआ।

4. पहले समय में एक प्रकृति का बंध कर दूसरे समय में भी एक ही प्रकृति का बंध करे तो वह चौथा अवस्थित बंध हुआ।

इस प्रकार अवस्थित बंध चार हुए।

अवक्तव्य बंध :

एक भी कर्म का बंध न कर पुनः कर्मबंध करे तो उसे अवक्तव्य बंध कहते हैं। मूल प्रकृतियों में अवक्तव्य बंध नहीं होता है, क्योंकि चौदहवें गुण-स्थान में कर्म बंध रहित स्थिति पाने के बाद आत्मा पुनः कर्म का बंध नहीं करती है।

एगादहिगे भूओ एगाई ऊणगम्मि अप्पतरो ।
तम्मत्तोऽवट्ठियओ पढमे समए अवत्तव्वो ।।23।।

–: शब्दार्थ :–

एगादहिगे=एकादि अधिक प्रकृतियों का बंध होने से,	**तम्मत्तो**=उतनी प्रकृतियों का बंध होने से,
भूओ=भूयस्कार बंध,	**अवट्ठियओ**=अवस्थित बंध,
एगाईऊणगम्मि=एकादि प्रकृति के द्वारा तीन बंध होने से,	**पढमेसमए**=अबन्धक होने के बाद पुनर्बन्ध के पहले समय में,
अप्पतरो=अल्पतर बंध,	**अवत्तव्वो**=अवक्तव्य बंध ।

भावार्थ :–एकादि अधिक प्रकृतियों का बन्ध होने से भूयस्कार बन्ध होता है । एकादि प्रकृतियों के द्वारा हीन बंध होने पर अल्पतर बन्ध और उतनी ही प्रकृतियों का बन्ध होने से अवस्थित बन्ध होता है तथा अबन्धक होने के बाद पुनःबंध के पहले समय में बन्ध हो, उसे अवक्तव्य बंध कहते हैं ।

विवेचन :–एक का बंध करने के बाद दो का बंध करना, दो का बंध करने के बाद चार का बंध करना, चार का बंध करने के बाद छ का बंध करना, इस प्रकार अधिक अधिक प्रकृतियों के बंध को भूयस्कार बंध कहते है ।

अधिक प्रकृतियों का बंध होने के बाद कम प्रकृतियों का बंध होता है, उसे अल्पतर बंध कहते है ।

– पहले व बाद में उतनी ही प्रकृतियों का बंध हो, उसे अवस्थित बंध कहते है ।

– चौदहवे गुणस्थान में अबंधक होने के बाद पुनः बंध नहीं होता है, अतः उसे अवक्तव्य बंध कहते है ।

नव छ चउ दंसे दु दु तिदु मोहे दु इगवीस सत्तरस ।
तेरस नव पण चउ ति दु इक्को नव अट्ठ दस दुन्नि ।।24।।

—: शब्दार्थ :—

नव=नौ प्रकृति का,
छ=छह प्रकृति का,
चउ=चार प्रकृति का बंधस्थान,
दंसे=दर्शनावरण की उत्तर प्रकृतियों का,
दु=दो भूयस्कार बंध,
दु=दो अल्पतर बंध,
ति=तीन अवस्थित बंध,
दु=दो अवक्तव्य बंध,
मोहे=मोहनीय कर्म में
दुइगवीस=बाईस, इक्कीस प्रकृतियों का बन्धस्थान,
सत्तरस=सत्रह प्रकृतियों का बन्धस्थान,
तेरस=तेरह प्रकृतियों का,
नव=नौ का,
पण=पाँच का,
चउ=चार का,
ति=तीन का,
दु=दो का,
इक्को=एक प्रकृति का बंधस्थान,
नव=नौ भूयस्कार बंध,
अट्ठ=आठ अल्पतर बन्ध,
दस=दस अवस्थित बंध,
दुन्नि=दो अवक्तव्य बंध ।

भावार्थ :—दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों के नौ, छह और चार प्रकृतियों के तीन बंधस्थान हैं और उनमें दो भूयस्कार, दो अल्पतर, तीन अवस्थित और दो अवक्तव्य बंध होते हैं । मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियों के बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृति रूप दस बंधस्थान होते हैं । तथा उनमें नौ भूयस्कार, आठ अल्पतर, दस अवस्थित और दो अवक्तव्य बंध होते हैं ।

विवेचन :—यद्यपि आठ कर्मों में पहला कर्म ज्ञानावरणीय कर्म है । परंतु ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयुष्य, गोत्र और अंतराय इन पाँच कर्मों में भूयस्कार आदि बंध नहीं होते हैं ।

ज्ञानावरणीय व अंतराय का बंध एक साथ होता है और एक साथ रुकता है ।

वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म की एक समय में एक ही प्रकृति का बंध होता है, अतः उनमें भी भूयस्कार आदि बंध नहीं हैं ।

दर्शनावरणीय, मोहनीय और नाम कर्म में ही भूयस्कार आदि बंध घटते हैं ।

दर्शनावरणीय में भूयस्कार आदि बंध :

दो भूयस्कार बंध : आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्म संपराय तक दर्शनावरणीय की चार प्रकृतियों का बंध करता हुआ जीव जब अपूर्वकरण के दूसरे भाग से नीचे आता है, तब निद्राद्विक का भी बंध प्रारंभ करता है, अतः चार से छह प्रकृतियों का बंध होने से पहला भूयस्कार बंध हुआ ।

वहां से गिरकर जब जीव दर्शनावरणीय की नौ प्रकृतियों का बंध करता है, तब दूसरा भूयस्कार बंध हुआ ।

दो अल्पतर बंध : मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनावरणीय की 9 प्रकृतियों का बंध करता हुआ जब तीसरे-चौथे गुणस्थान में आता है, तब थीणद्धित्रिक का बंध विच्छेद होने से पहला अल्पतर बंध हुआ ।

फिर जब जीव आठवें गुणस्थान के दूसरे भाग में पहुँचता है, तब छह में से चार ही प्रकृतियों का बंध होने से दूसरा अल्पतर बंध हुआ ।

3 अवस्थित बंध :

(1) अनादि काल से 8 अथवा 9 प्रकृतियों का भूयस्कार बंध कर दूसरे समय में भी 9 का बंध करता है ।

(2) छह का भूयस्कार या अल्पतर बंध करने के बाद दूसरे समय में भी छह का बंध करता है ।

(3) चार का अल्पतर या अवक्तव्य बंध करने के बाद पुनः 4 का अवस्थित बंध होता है ।

2 अवक्तव्य बंध : ग्यारहवें गुणस्थान में दर्शनावरणीय का बिल्कुल बंध नहीं होता है, वहाँ से गिरकर दसवें गुणस्थान में 4 का बंध होता है यह पहला अवक्तव्य बंध हुआ ।

ग्यारहवें गुणस्थान में मरकर जीव अनुत्तर विमान में पैदा होता है तो वहाँ 6 प्रकृतियों का बंध होने से दूसरा अवक्तव्य बंध हुआ ।

दर्शनावरणीय के बंधस्थान आदि

गुणस्थानक	प्रकृति	बंधस्थान	भूयस्कार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य
पहला-दूसरा	9 प्रकृति	पहला	दूसरा	चढ़ता	पहला	
तीसरा-8/1 तक	6 प्रकृति	दूसरा	पहला	पहला	दूसरा	भवक्षय में दूसरा
8/2 से 10	4 प्रकृति	तीसरा	गिरता	दूसरा	तीसरा	कालक्षय में पहला
11 वाँ	अबंध					

मोहनीय के बंध स्थान

मोहनीय की बंध योग्य 26 प्रकृतियाँ हैं । एक समय में तीन वेदों में से 1 का बंध होने से तथा हास्य-रति तथा शोक-अरति युगल में से एक का ही बंध होने से एक समय में 22 प्रकृतियों का ही बंध हो सकता है ।

मोहनीय के 22, 21, 17, 13, 9, 5, 4, 3, 2 और 1 कुल 10 बंध स्थान हैं ।

(1) पहले गुणस्थान में 22 का बंध (अनंतानुबंधी चतुष्क, अप्रत्याख्यानीय चतुष्क, प्रत्याख्यानीय चतुष्क, संज्वलन चतुष्क, एक वेद, एक युगल, भय और जुगुप्सा मिथ्यात्व ।

(2) दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व सिवाय 21 का बंध ।

(3) तीसरे-चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चार सिवाय, 17 का बन्ध ।

(4) पाँच वें गुणस्थान में अप्रत्याख्यानीय चतुष्क सिवाय 13 का बन्ध ।

(5) छठे सातवें-आठवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानीय चतुष्क सिवाय 9 का बंध ।

(6) नौवें गुणस्थान के पहले भाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा सिवाय 5 का बंध ।

(7) नौवें गुणस्थान के दूसरे भाग में वेद सिवाय 4 का बंध ।

नौवें गुणस्थान के तीसरे भाग में संज्वलन क्रोध सिवाय 3 का बंध ।

नौवें गुणस्थान के चौथे भाग में संज्वलन मान सिवाय 2 का बंध ।

नौवें गुणस्थान के पांचवे भाग में संज्वलन माया सिवाय 1 का बंध ।

मोहनीय के 9 भूयस्कार बंध–

(1) उपशम श्रेणि से गिरता हुआ नौवें गुणस्थान में संज्वलन लोभ के साथ माया के बंध का प्रारंभ करता है, तब प्रथम समय में 2 के बंध का पहला भूयस्कार होता है ।

(2) फिर संज्वलन मान के बंध के प्रारंभ में 3 का बंध करे तव्व ।

दूसरा भूयस्कार

(3) फिर संज्वलन क्रोध के बंध का प्रारंभ करते समय 4 का बंध करता है वह तीसरा भूयस्कार ।

(4) फिर पुरुष वेद के बंध का प्रारंभ करते समय 5 का बंध करता है वह चौथा भूयस्कार ।

(5) आठवें गुणस्थान में हास्य-रति, भय-जुगुप्सा के बंध का प्रारंभ करते समय 9 का बंध करता है-वह पाँचवाँ भूयस्कार ।

(6) पाँचवें गुणस्थान में प्रत्याख्यान चतुष्क का बंध प्रारंभ करते समय 13 का बंध करता है, वह छठा भूयस्कार ।

(7) चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानीय चतुष्क के बंध का प्रारंभ करते समय 17 के बंध का सातवाँ भूयस्कार ।

(8) दूसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी चतुष्क के बंध का प्रारंभ करते समय 21 के बंध का आठवाँ भूयस्कार ।

(9) पहले गुणस्थानक में मिथ्यात्व के बंध का प्रारंभ करते समय 22 के बंध का नौवाँ भूयस्कार ।

आठ अल्पतर बंध

1. 22 के बंध के बाद 17 का बंध करते समय पहला अल्पतर बंध

2. 17 के बंध के बाद 13 का बंध करते समय दूसरा अल्पतर बंध

3. 13 के बंध के बाद 9 का बंध करते समय तीसरा अल्पतर बंध

4. 9 के बंध के बाद 5 का बंध करते समय चौथा अल्पतर बंध

5. 5 के बंध के बाद 4 का बंध करते समय पाँचवाँ अल्पतर बंध

6. 4 के बंध के बाद 3 का बंध करते समय छठा अल्पतर बंध

7. 3 के बंध के बाद 2 का बंध करते समय सातवाँ अल्पतर बंध

8. 2 के बंध के बाद 1 का बंध करते समय आठवाँ अल्पतर बंध

अवस्थित बंध

मोहनीय कर्म के 10 बंध स्थान होने से 10 अवस्थित बंध होते है ।

2 अवक्तव्य बंध

(1) ग्यारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का बंध न करके जब कोई जीव वहाँ से च्युत होकर नौवें गुणस्थान में आता है, तब वहाँ संज्वलन लोभ का बंध होता है ।

यह प्रथम अवक्तव्य बंध है ।

(2) ग्यारहवें गुणस्थान में आयु पूर्ण होने पर अनुत्तर देव में जन्म लेने पर 17 प्रकृतियों का बंध करता है, वह दूसरा अवक्तव्य बंध है ।

तिपणछअट्ठनवहिया वीसा तीसेगतीस इग नामे ।
छस्सगअट्ठतिबन्धा सेसेसु य ठाणमिक्किक्कं ।।25।।

–: शब्दार्थ :–

तिपणछअट्ठनवहिया=तीन, पाँच, छह, आठ और नौ अधिक,	**छ**=छह भूयस्कार बंध,
वीसा=बीस,	**स्सग**=सात अल्पतर बन्ध,
तीस=तीस,	**अट्ठ**=आठ अवस्थित बन्ध,
एगतीस=इकतीस,	**तिबंधा**=तीन अवक्तव्य बन्ध,
इग=एक,	**सेसेसु**=बाकी के ज्ञानावरण आदि पाँच कर्मों में
नामे=नामकर्म,	**ठाण**=बन्धस्थान,
	इक्किक्कं=एक-एक ।

भावार्थ :–नामकर्म में तीन, पाँच, छह, आठ और नौ अधिक बीस तथा तीस, इकतीस, एक प्रकृति रूप बंधस्थान होते हैं तथा इनमें छह भूयस्कार बंध, सात अल्पतर बन्ध, आठ अवस्थित बन्ध और तीन अवक्तव्य बन्ध हैं । दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्म के सिवाय शेष पाँच कर्मों में एक-एक बन्धस्थान है ।

विवेचन :–इस गाथा में नामकर्म के बन्धस्थानों और उनमें भूयस्कार आदि बन्धों की संख्या तथा शेष पाँच कर्मों के बन्धस्थानों को बतलाया है ।

नामकर्म के आठ बन्धस्थान हैं, तेईस प्रकृति रूप, पच्चीस प्रकृति रूप, छब्बीस प्रकृति रूप, अट्ठाईस प्रकृति रूप और उनतीस प्रकृति रूप ये पाँच स्थान बन जाते हैं और तीन बंधस्थान क्रमशः तीस प्रकृति रूप, इकतीस प्रकृति रूप और एक प्रकृति रूप हैं । जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

नामकर्म की बन्धयोग्य 67 प्रकृतियाँ हैं । एक समय में एक जीव को सभी प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है । किन्तु उनमें से एक समय में एक जीव के तेईस, पच्चीस आदि प्रकृतियाँ ही बन्ध को प्राप्त होती हैं । इसीलिए नामकर्म के आठ बन्धस्थान माने गये हैं ।

नामकर्म का बहुभाग पुद्गलविपाकी है और उसका अधिकतर उपयोग जीवों की शारीरिक रचना में ही होता है ।

वर्ण चतुष्क, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण और उपघात, नामकर्म की ये नौ प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं । चारों-गति के सभी जीवों के आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक इनका बन्ध अवश्य होता है । इनके साथ तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुण्ड संस्थान, स्थावर, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, सूक्ष्म-बादर में से कोई एक, साधारण-प्रत्येक में से कोई एक, इन चौदह प्रकृतियों को ध्रुवबन्धिनी नौ प्रकृतियों के साथ मिलाने पर (14 + 9) तेईस प्रकृतियों का बन्धस्थान होता है । ये तेईस प्रकृतियाँ अपर्याप्त एकेन्द्रिय प्रयोग्य हैं, जिनको एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी बाँधता है । अर्थात् इस स्थान का बन्धक जीव मरकर एकेन्द्रिय अपर्याप्त में ही जन्म लेता है ।

इन तेईस प्रकृतियों में से अपर्याप्त प्रकृति को कम करके पर्याप्त, उच्छ्वास और पराघात प्रकृतियों को मिलाने से एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित

पच्चीस का बन्धस्थान होता है ।

उनमें से स्थावर, पर्याप्त एकेन्द्रिय जाति, उच्छ्वास और पराघात को घटाकर त्रस, अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जाति, सेवार्त संहनन और औदारिक अंगोपांग के मिलाने से द्वीन्द्रिय अपर्याप्त सहित पच्चीस का स्थान होता है ।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जाति के स्थान में त्रीन्द्रिय जाति के मिलाने से त्रीन्द्रिय अपर्याप्त सहित पच्चीस का स्थान, त्रीन्द्रिय जाति के स्थान में चतुरिन्द्रिय जाति के मिलाने से चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त सहित पच्चीस का स्थान और चतुरिन्द्रिय जाति के स्थान में पंचेन्द्रिय जाति के मिलाने से पंचेन्द्रिय अपर्याप्त सहित पच्चीस का स्थान होता है । इसमें तिर्यंचगति के स्थान में मनुष्यगति के मिलाने से मनुष्य अपर्याप्त सहित पच्चीस का स्थान होता है ।

मनुष्यगति सहित पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में से त्रस, अपर्याप्त, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सेवार्त संहनन और औदारिक अंगोपांग को घटाकर स्थावर, पर्याप्त, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, उच्छ्वास, पराघात और आतप तथा उद्योत में से किसी एक को मिलाने पर एकेन्द्रिय पर्याप्त युक्त छब्बीस का बन्धस्थान होता है ।

नामकर्म की नौ ध्रुवबन्धिनी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर में से एक, शुभ और अशुभ में से एक, सुभग, आदेय, यशः कीर्ति और अयशःकीर्ति में से एक, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, पहला संस्थान, देवानुपूर्वी, वैक्रिय अंगोपांग, सुस्वर, शुभ विहायोगति, उच्छ्वास और पराघात इन प्रकृति रूप देवगति सहित अट्ठाईस का बन्धस्थान होता है । इस स्थान का बन्धक मरकर देव होता है ।

नरकगति की अपेक्षा अट्ठाईस का बंधस्थान-नौ ध्रुवबंधिनी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, हुण्डसंस्थान, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय अंगोपांग, दुःस्वर, अशुभ विहायोगति, उच्छ्वास और पराघात, इन प्रकृति रूप नरकगतियोग्य अट्ठाईस का बन्धस्थान होता है ।

नौ ध्रुवबंधिनी तथा त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर या अस्थिर, शुभ अथवा अशुभ, दुर्भग, अनादेय, यशः कीर्ति या अयशः कीर्ति, तिर्यंचगति,

द्वीन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुण्ड संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, सेवार्त संहनन, औदारिक अंगोपांग, दुःस्वर, अशुभ विहायोगति, उच्छ्वास, पराघात, इन प्रकृति रूप द्वीन्द्रिय पर्याप्तयुत उनतीस प्रकृति का बंधस्थान होता है । इसमें द्वीन्द्रिय के स्थान में त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय के स्थान में चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के स्थान में पंचेन्द्रिय को मिलाने से क्रमशः त्रीन्द्रिययुत, चतुरिन्द्रिययुत और पंचेन्द्रिययुत उनतीस प्रकृति का बन्धस्थान होता है ।

इस स्थान में यह विशेषता समझना चाहिए कि सुभग और दुर्भग, आदेय और अनादेय, सुस्वर और दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, इन युगलों में से एक-एक प्रकृति का तथा छह संस्थानों और छह संहननों में से किसी एक संस्थान का और किसी एक संहनन का बंध होता है । इसमें तिर्यंचगति और तिर्यंचानुपूर्वी को घटाकर मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी के मिलाने से पर्याप्त मनुष्य सहित उनतीस का बंधस्थान होता है ।

नौ ध्रुवबंधिनी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर या अस्थिर, शुभ या अशुभ, आदेय, यशःकीर्ति या अयशःकीर्ति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, प्रथम संस्थान, देवानुपूर्वी, वैक्रिय अंगोपांग, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, पराघात, तीर्थंकर, इन प्रकृति रूप देवगति और तीर्थंकर सहित उनतीस का बंधस्थान होता है । इस प्रकार से उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान छह होते हैं । इन स्थानों का बन्धक द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में तथा मनुष्यगति और देवगति में जन्म लेता है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत उनतीस के चार बन्धस्थानों में उद्योत प्रकृति के मिलाने से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत तीस के चार बंधस्थान होते हैं । पर्याप्त मनुष्य सहित उनतीस के बन्धस्थान में तीर्थंकर प्रकृति के मिलाने से मनुष्यगति सहित तीस का बंधस्थान होता है । देवगति सहित उनतीस के बन्धस्थान में से तीर्थंकर प्रकृति घटाकर आहारकद्विक को मिलाने से देवगतियुत तीस का बंधस्थान होता है । इस प्रकार तीस प्रकृतिक बंधस्थान छह होते हैं ।

देवगति सहित उनतीस के बंधस्थान में आहारकद्विक के मिलाने से देवगति सहित इकतीस का बन्धस्थान होता है । एक प्रकृतिक बंधस्थान में

केवल एक यश:कीर्ति का ही बन्ध होता है ।

इस प्रकार नामकर्म के आठ बंधस्थानों को बतलाकर अब इनमें भूयस्कार बन्ध आदि की संख्या बतलाते हैं ।

भूयस्कारादि बंध

नामकर्म के बंधस्थान आठ हैं । उनमें छह भूयस्कार, सात अल्पतर, आठ अवस्थित और तीन अवक्तव्य बन्ध होते हैं । तेईस का बन्ध करके पच्चीस का बन्ध करना पहला भूयस्कार बन्ध, पच्चीस का बन्ध करके छब्बीस का बन्ध करना दूसरा भूयस्कार, छब्बीस का बन्ध करके अट्ठाईस का बंध करना तीसरा भूयस्कार, अट्ठाईस का बंध करके उनतीस का बंध करना चौथा भूयस्कार, आहारकद्विक सहित तीस का बंध करके इकतीस का बन्ध करना छठा भूयस्कार बन्ध होता है । इस प्रकार छह भूयस्कार बन्ध हैं ।

नौवें गुणस्थान में एक यश:कीर्ति का बन्ध करके वहाँ से च्युत होकर आठवें गुणस्थान में जब कोई जीव तीस अथवा इकतीस का बन्ध करता है तो वह पृथक् भूयस्कार नहीं गिना जाता है । क्योंकि उसमें भी तीस अथवा इकतीस का ही बन्ध करता है और यही बन्ध पाँचवें और छठे भूयस्कार बन्धों में भी होता है, अतः उसे पृथक् नहीं गिना है ।

अब सात अल्पतर बंध बतलाते हैं । अपूर्वकरण गुणस्थान में देवगति योग्य 28, 29, 30 अथवा 31 का बन्ध करके 1 प्रकृतिक बंधस्थान का बन्ध करने पर पहला अल्पतर बंध होता है । आहारकद्विक और तीर्थंकर सहित इकतीस का बंध करके जो जीव देवलोक में उत्पन्न होता है, वह प्रथम समय में ही मनुष्यगतियुत तीस प्रकृतियों का बन्ध करता है, यह दूसरा अल्पतर बन्ध है । वही जीव स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्यगति में जन्म लेकर देवगति योग्य तीर्थंकर सहित उनतीस प्रकृतियों का बन्ध करता है तब तीसरा अल्पतर बंध होता है । जब कोई तिर्यंच या मनुष्य, तिर्यंचगति के योग्य पूर्वोक्त 29 प्रकृतियों का बन्ध करके विशुद्ध परिणामों के कारण देवगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करता है तब चौथा अल्पतर बंध, अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थान का बन्ध करके संक्लेश परिणामों के कारण जब कोई जीव एकेन्द्रिय के योग्य छब्बीस प्रकृतियों का बंध करता है तब पाँचवाँ अल्पतर बन्ध होता है । छब्बीस का बन्ध करके पच्चीस का बन्ध करने पर छठा अल्पतर बन्ध होता है तथा पच्चीस

का बन्ध करके तेईस का बन्ध करने पर सातवाँ अल्पतर बंध होता है ।

आठ बन्धस्थानों की अपेक्षा आठ ही अवस्थित बन्ध होते हैं ।

ग्यारहवें गुणस्थान में नामकर्म की एक भी प्रकृति को न बाँधकर वहाँ से च्युत होकर जब कोई जीव एक प्रकृति का बंध करता है तब पहला अवक्तव्य बन्ध होता है तथा ग्यारहवें गुणस्थान में मरण करके कोई जीव अनुत्तर देवों में जन्म लेकर यदि मनुष्यगति योग्य तीस प्रकृति का बन्ध करता है तब दूसरा अवक्तव्य बन्ध होता है और मनुष्यगति योग्य उनतीस प्रकृति का बन्ध करता है तो तीसरा अवक्तव्य बन्ध होता है । इस प्रकार तीन अवक्तव्य बन्ध होते हैं ।

पाँच कर्मों-ज्ञानावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र, अन्तराय-में एक-एक ही बंधस्थान होता है । क्योंकि ज्ञानावरण और अंतराय की पाँच-पाँच प्रकृतियाँ एक साथ ही बँधती हैं और एक साथ ही रुकती हैं । वेदनीय, आयु, गोत्र कर्म की उत्तर प्रकृतियों में भी एक समय में एक-एक प्रकृति का ही बंध होता है । जिससे इन कर्मों में भूयस्कार आदि बंध नहीं होते हैं ।

यह एक सामान्य नियम है किन्तु वेदनीय के सिवाय शेष चार कर्मों में अवक्तव्य और अवस्थित बंध होते हैं । क्योंकि ग्यारहवें गुणस्थान में ज्ञानावरण, अंतराय और गोत्र कर्म का बंध न करके जब कोई जीव वहाँ से च्युत होता है और नीचे के गुणस्थान में आकर पुनः उन कर्मों का बंध करता है तब प्रथम समय में अवक्तव्य बंध होता है और द्वितीय आदि समयों में अवस्थित बंध होता है तथा त्रिभाग में जब आयु कर्म का बन्ध होता है तब प्रथम समय में अवक्तव्य बंध होता है और द्वितीय आदि समयों में अवस्थित बंध होता है । किन्तु वेदनीय कर्म में केवल अवस्थित बंध ही होता है, अवक्तव्य बंध नहीं । क्योंकि वेदनीय कर्म का अबन्ध अयोगि-केवली गुणस्थान में होता है, किन्तु वहाँ से गिरकर जीव के नीचे के गुणस्थान में नहीं आने के कारण पुनः बंध नहीं होता है ।

इस प्रकार से कर्मों की बंध-योग्य 120 उत्तर प्रकृतियों में बंधस्थानों और उनके भूयस्कर आदि बंधों को बतलाया गया है । प्रकृतिबंध का वर्णन करने के बाद अब आगे की गाथाओं में स्थितिबंध का वर्णन करते हैं ।

स्थिति-बंध

वीसयर कोडिकोडी नामे गोए य सत्तरी मोहे ।
तीसयर चउसु उदही निरयसुराउंमि तित्तीसा ।।26।।
मुत्तुं अकसायठिइं बार मुहुत्ता जहन्न वेयणिए ।
अट्ठट्ठ नामगोएसु सेसएसु मुहुत्ततो ।।27।।

—: शब्दार्थ :—

वीस=बीस,
अयरकोडिकोडी=कोडा-कोडी सागरोपम,
नामे=नामकर्म की,
गोए=गोत्रकर्म की,
य=और,
सत्तरी=सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम,
मोहे=मोहनीय कर्म की,
तीस=तीस कोड़ा कोड़ा सागरोपम,
इयरचउसु=शेष चार कर्मों की,
उदही=सागरोपम,
निरयसुराउंमि=नारक और देवों की आयु,
तित्तीसा=तैंतीस सागरोपम,
मुत्तं=छोड़कर,
अकसाय=अकषायी को,
ठिइं=स्थिति,
बार मुहुत्ता=बारह मुहूर्त,
जहन्न=जघन्य,
वेयणिए=वेदनीय कर्म की,
अट्ठट्ठ=आठ-आठ मुहूर्त,
नामगोएसु=नाम और गोत्र कर्म की,
सेसएसु=शेष पाँच कर्मों की,
मुहुत्ततो=अन्तर्मुहूर्त ।

भावार्थ :—नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम होती है । मोहनीय कर्म की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम, बाकी के चार कर्मों की तीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम तथा नारक और देवों की आयु तैंतीस सागरोपम है ।

अकषायी को छोड़कर (सकषायी की) वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है, नाम और गोत्र कर्म की आठ-आठ मुहूर्त तथा शेष पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है ।

विवेचन :–कर्मों की स्थितिबंध का मुख्य आधार कषायों का उदय है । कषायों का उदय जितना तीव्र होगा, कर्मों की स्थिति उतनी ही ज्यादा होगी । कषाय मंद होंगे तो स्थिति भी मंद होगी ।

आठ कर्मों का उत्कृष्ट स्थिति बंध :

ज्ञानावरणीय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

दर्शनावरणीय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

वेदनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

नाम कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

गोत्र कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

अंतराय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

आयुष्य कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 33 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर कोड़ा कोड़ी होता है । 1 कोडाकोडी = 100000000000000

आयुष्य कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध देव व नरक संबंधी है, अतः उनके उत्कृष्ट आयुष्य का निर्देशकर आयु की उत्कृष्ट स्थिति गाथा में बताई है ।

आठ कर्मों का जघन्य स्थिति बंध

ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त है ।

दर्शनावरणीय कर्म का जघन्य स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त है ।

मोहनीय कर्म का जघन्य स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त है ।

आयुष्य कर्म का जघन्य स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त है ।

अंतराय कर्म का जघन्य स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त है ।

नाम कर्म का जघन्य स्थिति बंध 8 मूहूर्त है ।

गोत्र कर्म का जघन्य स्थिति बंध 8 मुहूर्त है ।

वेदनीय कर्म का जघन्य स्थिति बंध 12 मुहूर्त है ।

वेदनीय कर्म का बंध सकषायिक और अकषायिक दोनों प्रकार से होता है ।

1 से 10 गुणस्थानक तक वेदनीय का बंध सकषायिक है ।

11 से 13 गुणस्थानक में वेदनीय का बंध अकषायिक है ।

वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध जो 12 मुहूर्त कहा है, वह सकषायिक है ।

अकषायिक वेदनीय का बंध सिर्फ दो समय का है । 11-12 व 13 वें गुणस्थानक में कषाय का अभाव होने से पहले समय में शाता वेदनीय का बंध होता है और वह कर्म दूसरे समय में उदय में आ जाता है, अतः वह कर्म 2 समय की स्थिति का ही हुआ ।

कर्मों का अबाधा काल

किसी भी कर्म के बंध के साथ उसकी स्थिति का बंध होता है, परंतु वह कर्म उसी दिन से उदय में नहीं आ जाता है । हर कर्म अपने अबाधा काल की स्थिति के पूर्ण होने के बाद ही उदय में आता है ।

कर्म की स्थिति के दो भाग होते हैं–

(1) भोग्य स्थिति और (2) अभोग्य स्थिति ।

जिस काल में कर्म अपना फल नहीं देता है, उसे अभोग्य स्थिति कहते हैं ।

भोग्य स्थिति में कर्मों की जो रचना होती है, उसे निषेक रचना कहते हैं ।

अबाधा स्थिति के बाद प्रथम समय में उदय में आनेवाले कर्म दलिक होते हैं, उसे प्रथम निषेक कहते हैं, उसके बाद दूसरे समय में भोगने योग्य जो कर्मदलिक होते हैं, वे दूसरा निषेक होते हैं । इस प्रकार अबाधा स्थिति के ऊपर जितने समय होते हैं, उतने निषेक होते हैं ।

जिस कर्म की जितने कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति होती है, उतने सौ वर्ष का अबाधा काल होता है ।

उदा. कोई कर्म 10 कोड़ाकोड़ी की स्थितिवाला हो तो उसका अबाधाकाल 1000 वर्ष होगा ।

कर्म की उत्कृष्ट स्थिति में अबाधा काल :

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है तो उसका अबाधा काल 3000 वर्ष है ।

नाम-गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है तो उसका अबाधा काल 2000 वर्ष है ।

मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है तो उसका अबाधाकाल 7000 वर्ष है ।

विग्घावरणअसाए तीसं अट्ठार सुहुमविगलतिगे ।
पढमागिइसंघयणे दस दुसुवरिमेसु दुगवुड्ढी ।।28।।

–: शब्दार्थ :–

विग्घावरणअसाए=पाँच अन्तराय, पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण और असातावेदनीय कर्म की,	**पढमागिइसंघयणे**=प्रथम संस्थान और प्रथम संहनन में,
तीसं=तीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,	**दस**=दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,
अट्ठार=अठारह कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,	**दुसु**=दोनों में,
सुहुमविगलतिगे=सूक्ष्मत्रिक और विकलत्रिक में,	**उवरिमेसु**=उत्तर के संस्थान और संहननों में,
	दुगवुड्ढी=दो-दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की वृद्धि ।

भावार्थ :–पाँच अन्तराय, पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण और असाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम की है । नामकर्म के भेद सूक्ष्मत्रिक और विकलत्रिक की उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है । पहले संस्थान और पहले संहनन की दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम और आगे के प्रत्येक संस्थान और संहनन की स्थिति में दो-

दो सागरोपम की वृद्धि जानना चाहिए ।

विवेचन :–दानांतराय आदि 5, मतिज्ञानावरणीय आदि 5, दर्शनावरणीय चतुष्क व पाँच निद्रा तथा अशाता वेदनीय आदि 20 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है, अतः उनका अबाधा काल 3000 वर्ष और निषेक काल 3000 वर्ष न्यून 30 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

सूक्ष्म अपर्याप्त व साधारण नाम कर्म तथा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय जाति इन छह प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति 18 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है तो उसका अबाधा काल 1800 वर्ष है ।

प्रथम संस्थान समचतुरस्त्र तथा प्रथम संघयण वज्रऋषभ की उत्कृष्ट स्थिति 10 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

दूसरे संस्थान व संघयण की उत्कृष्ट स्थिति 12 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

तीसरे संस्थान व संघयण की उत्कृष्ट स्थिति 14 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

चौथे संस्थान व संघयण की उत्कृष्ट स्थिति 16 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

पाँचवें संस्थान व संघयण की उत्कृष्ट स्थिति 18 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

छठे संस्थान व संघयण की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

अबाधा काल

पहले संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट अबाधा काल 1000 वर्ष है ।

दूसरे संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट अबाधा काल 1200 वर्ष है ।

तीसरे संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट अबाधा काल 1400 वर्ष है ।

चौथे संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट अबाधा काल 1600 वर्ष है ।

पाँचवें संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट अबाधा काल 1800 वर्ष है ।

छठे संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट अबाधा काल 2000 वर्ष है ।

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

चालीस कसाएसुं मिउलहुनिद्धुण्हसुर हिसियमहुरे ।
दस दोसद्ढसमहिया ते हा लिद्दं बिलाईणं ।।29।।

—: शब्दार्थ :—

चालीस=चालीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,	**सियमहुरं**=श्वेत वर्ण और मधुर रस की,
कसाएसुं=कषायों की	**दस**=दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,
मिउलहुनिद्ध=मृदु, लघु, स्निग्ध स्पर्श,	**दोसद्ढसमहिया**=ढाई कोड़ा-कोड़ी सागरोपम अधिक,
उण्हसुरहि=उष्ण स्पर्श, सुरभिगंध की,	**ते**=वे (दस कोड़ा कोड़ी सागरोपम)
	हालिद्दंबिलाईणं=पीत वर्ण, अम्ल रस आदि ।

भावार्थ :—कषायों की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है । मृदु, लघु, स्निग्ध, उष्ण, स्पर्श, सुरभि गंध, श्वेत वर्ण और मधुर रस की दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की होती है । और इन दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम मे ढाई कोड़ा-कोड़ी सागरोपम साधिक स्थिति पीत वर्ण और अम्ल रस आदि की समझना चाहिए ।

विवेचन :—अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय और संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ आदि 16 कषायों की उत्कृष्ट स्थिति 40 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है और उनका अबाधा काल 4000 वर्ष है ।

मृदु, लघु, स्निग्ध, उष्ण, सुरभिगंध, श्वेतवर्ण तथा मधुररस की उत्कृष्ट स्थिति 10 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है और अबाधाकाल 1000 वर्ष है ।

पीत वर्ण और अम्ल रस की उत्कृष्ट स्थिति 12½ कोड़ा-कोड़ी सागरोपम एवं अबाधाकाल 1250 वर्ष है ।

लाल वर्ण और कषाय रस की उत्कृष्ट स्थिति 15 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है और अबाधा काल 1500 वर्ष है ।

नील वर्ण और कटुक रस की उत्कृष्ट स्थिति 17½ कोड़ा-कोड़ी सागरोपम एवं अबाधा काल 1750 वर्ष है । कृष्ण वर्ण और तिक्तरस की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम और अबाधा काल 2000 वर्ष है ।

दस सुहविहगई उच्चे सुरदुग थिरछक्क पुरिसरइहासे ।
मिच्छे सत्तरि मणुदुगइत्थीसाएसु पन्नरस ।।30।।

—: शब्दार्थ :—

दस=दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,	**मिच्छे**=मिथ्यात्व की,
सुहविहगइ उच्चे=शुभ विहायोगति और उच्चगोत्र,	**सत्तरि**=सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,
सुरदुग=देवद्विक,	**मणुदुगइत्थीसाएसु**=मनुष्यद्विक स्त्रीवेद और सातावेदनीय की,
थिरछक्क=स्थिरषट्क	**पन्नरस**=पन्द्रह कोड़ा-कोड़ी
पुरिस=पुरुषवेद,	सागरोपम ।
रइहासे=रति और हास्य मोहनीय,	

भावार्थ :—शुभ विहायोगति, उच्चगोत्र, देवद्विक, स्थिरषट्क, पुरुषवेद, रति और हास्य मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की है । मिथ्यात्व मोहनीय की सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपम तथा मनुष्यद्विक, स्त्रीवेद, सातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की है ।

विवेचन :—मोहनीयकर्म की 3 प्रकृतियाँ-पुरुषवेद, रति और हास्य, नामकर्म की 9 प्रकृतियाँ-शुभ विहायोगति, देवद्विक, (देवगति, देवानुपूर्वी) स्थिर षट्क (स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश) गोत्र कर्म की 1 प्रकृति-उच्चगोत्र ।

इन तेरह प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है और अबाधा काल 1000 वर्ष है ।

वेदनीय कर्म 1 प्रकृति-साता वेदनीय

मोहनीय कर्म 1 प्रकृति स्त्री वेद

नाम कर्म 2 प्रकृति मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वी) ।

इन चार प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थितिबंध 15 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम व अबाधाकाल 1500 वर्ष है ।

मिथ्यात्व मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम एवं अबाधाकाल 7000 वर्ष है ।

भयकुच्छअरइसोए विउव्वितिरिउरलनिरयदुगनीए ।
तेयपण अथिरछक्के तसचउथावरइगपणिंदी ।।31।।
नपुकुखगइसासचउगुरुकक्खडरुक्खसीयदुग्गंधे ।
वीसं कोड़ा-कोड़ी एवइयावाह वाससया ।।32।।

–: शब्दार्थ :–

भयकुच्छअरइसोए=भय, जुगुप्सा, अरति और शोक मोहनीय की,	**नपु**=नपुंसक वेद की,
विउव्वितिरउरलनिरयदुगनीए= वैक्रियद्विक, तिर्यंचद्विक, औदारिकद्विक, नरकद्विक और नीच गोत्र की,	**कुखगइ**=अशुभ विहायोगति की,
तेयपण=तैजस पंचक की,	**सासचउ**=उच्छ्वास चतुष्क की,
अथिरछक्के=अस्थिरषट्क की,	**गुरुकक्खडरुक्खसीय**=गुरु, कर्कश, रुक्ष और शीत स्पर्श की,
तसचउ=त्रस चतुष्क की,	**दुग्गंधे**=दुरभिगंध की,
थावरइगपंणिदी=स्थावर, एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय की,	**बीसं**=वीस,
	कोड़ा-कोड़ी=कोड़ा-कोड़ी सागरोपम,
	एवइया=इतनी,
	अवाह=अबाधा,
	वाससया=सौ वर्ष ।

भावार्थ :–भय, जुगुप्सा, अरति, शोक मोहनीय की, वैक्रियद्विक, तिर्यंचद्विक, औदारिकद्विक, नरकद्विक और नीच गोत्र की तथा तैजस पंचक, अस्थिरषट्क, त्रसचतुष्क, स्थावर, एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति की तथा–

नपुंसक वेद, अशुभविहायोगति, उच्छ्वास चतुष्क, गुरु, कर्कश, रुक्ष और शीत स्पर्श की और दुरभिगंध की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है । जिस कर्म की जितनी-जितनी उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है, उस कर्म की उतने ही सौ वर्ष प्रमाण अबाधा जानना चाहिए ।

विवेचन :–

1. मोहनीय कर्म की 5 – भय, जुगुप्सा, अरति, शोक और नपुंसक वेद ।

2. नाम कर्म की : वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, नरकगति, नरकानुपूर्वी,

तैजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति, पंचेन्द्रिय जाति, अशुभ विहायोगति, उच्छ्वास, उद्योत, आतप, पराघात, गुरु, कठोर, रुक्ष, शीत स्पर्श, दुर्गंध ।

3. गोत्रकर्म की 1 नीच गोत्र–

इन 42 प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है और उनका अबाधा काल 2000 वर्ष है ।

जो कर्म जितने समय तक उदय में नहीं आता है, अर्थात् जीव को बाधा नहीं पहुँचाता है, उस काल को अबाधा काल कहते हैं ।

जिस कर्म की जितने कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की स्थिति होती है, उतने सौ वर्ष उस कर्म का अबाधाकाल होता है ।

गुरु कोड़ि-कोड़ि अंतो तित्थाहाराण भिन्नमुहु बाहा ।
लहुठिइ संखगूणूणा नरतिरियाणाउ पल्लतिगं ।।33।।

–: शब्दार्थ :–

गुरु=उत्कृष्ट स्थिति,	**बाहा**=अबाधाकाल,
कोड़ि-कोड़िअंतो=अंतः कोड़ि-कोड़ि सागरोपम,	**लहुठिइ**=जघन्यस्थिति,
तित्थाहाराण=तीर्थंकर और आहारक द्विक नामकर्म की,	**संखगुणूणा**=संख्यातगुण हीन,
भिन्नमुहु=अन्तर्मुहूर्त,	**नरतिरियाण**=मनुष्य और तिर्यंच,
	आउ=आयु,
	पल्लतिगं=तीन पल्योपम ।

भावार्थ :–तीर्थंकर और आहारकद्विक नामकर्म की उत्कृष्ट स्थिति अन्तः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम और अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है । जघन्य स्थिति संख्यात गुणहीन अंतःकोड़ा-कोड़ी सागरोपम होती है । मनुष्य और तिर्यंच आयु की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम है ।

विवेचन :–प्रश्न : तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक की उत्कृष्ट स्थिति अंतः कोटा कोटि सागरोपम की जो कही गई है और जघन्य स्थिति भी संख्यात गुणहीन अंतःकोड़ा-कोड़ी सागरोपम की कही गई है-आत्मा त्रस अवस्था में एक साथ दो हजार सागरोपम और पंचेन्द्रिय अवस्था में एक

हजार सागरोपम तक ही रह सकती है तो तीर्थंकर नाम कर्म की इतनी लंबी स्थिति वाले को तो तिर्यंच गति में जाना ही पड़ेगा दूसरी ओर तिर्यंच गति में तीर्थंकर नाम कर्म की सत्ता का निषेध भी किया गया है ।

उत्तर : अनिकाचित तीर्थंकर नामकर्म की सत्तावाला जीव चारों गति में जा सकता है । आगम में तिर्यंच गति में तीर्थंकर नामकर्म की सत्ता का जो निषेध किया गया है, वह निकाचित तीर्थंकर नामकर्म की अपेक्षा समझना चाहिए अनिकाचित की अपेक्षा नहीं ।

तिर्यंच गति में भी अनिकाचित तीर्थंकर नाम कर्म की सत्ता हो सकती है ।

अनिकाचित अवस्था में रहे तीर्थंकर नामकर्म की सत्ता तो अपवर्तनादि करण द्वारा कम होकर नष्ट हो सकती है ।

उत्कृष्ट से तीर्थंकर नाम कर्म की गाढ़ निकाचना की स्थिति कुछ न्यून दो पूर्व करोड वर्ष अधिक 33 सागरोपम है ।

तीर्थंकर नाम कर्म की निकाचना पूर्व के तीसरे भव में ही होती है । अधिकतम पूर्व करोड वर्ष के आयुष्यवाली आत्मा तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित कर अनुत्तर देवविमान में उत्पन्न होकर वहाँ से च्यवकर 84 लाख पूर्व वर्ष वाले मनुष्य बने तो तीर्थंकर नाम कर्म की निकाचना कुछ न्यून दो करोड़ पूर्व वर्ष अधिक 33 सागरोपम ही होती है ।

आहारक द्विक का अबाधा काल पूर्ण होने पर तुरंत प्रदेशोदय या विपाकोदय चालू होता है । कभी देशोनपूर्व करोड़ वर्ष के बाद भी विपाकोदय होता है ।

एक पूर्व करोड़ वर्ष के आयुष्यवाले किसी अप्रमत्त मुनिने आठ वर्ष की उम्र में आहारक द्विक का बंध किया हो और वे मुनि जीवन के अंतिम समय में आहारक शरीर बनाएँ तो उस अपेक्षा से देशोन पूर्व करोड़ वर्ष बाद आहारक शरीर की रचना रूप विपाकोदय होता है । आहारक शरीर अन्तर्मुहूर्त बाद नष्ट हो जाता है, अतः उसका विपाकोदय अन्तर्मुहूर्त के लिए ही होता है, इसके सिवाय आहारक द्विक का प्रदेशोदय होता । आहारक शरीर की तरह आहारक बंधन और आहारक संघातन की उत्कृष्ट स्थिति अंतः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम और जघन्य स्थिति संख्यात गुण न्यून अंतःकोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

मनुष्य व तिर्यंच के आयुष्य की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम है ।

इगविगल पुव्वकोडिं पलियासंखस आउचउ अमणा ।
निरुवकमाण छमासा अबाह सेसाण भवतंसो ।।34।।

—: शब्दार्थ :—

इगविगल=एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय,	**निरुवकमाण**=निरूपक्रम आयुवाले के,
पुव्वकोडिं=पूर्व कोड़ी वर्ष की आयु,	**छमासा**=छह माह
पलियासंखस=पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग,	**अबाह**=अबाधाकाल,
आउचउ=चारों आयु,	**सेसाण**=बाकी के (संख्यात वर्ष की तथा सोपक्रम आयु वाले के),
अमणा=असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त,	**भवतंसो**=भव का तीसरा भाग ।

भावार्थ :—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पूर्व कोटि वर्ष की आयु और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त चारों आयु को पल्योपम के असंख्यातवे भाग जितनी आयु बाँधते हैं । निरुपक्रम आयुवाले को छह माह का तथा शेष जीवों (संख्यात वर्ष की व सोपक्रम आयुवाले) के भव का तीसरा भाग जितना अबाधाकाल होता है ।

विवेचन :—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव मरकर संख्यात वर्ष के आयुष्यवाले तिर्यंच मनुष्य में ही पैदा होते हैं-देव-नरक में नहीं ! संख्यात वर्ष के आयुष्यवाले तिर्यंच, मनुष्य का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्व क्रोड़ वर्ष है, अतः एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय का परभव आयुष्य का उत्कृष्ट स्थिति बंध पूर्व करोड वर्ष है ।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय मरकर चारों गति में उत्पन्न हो सकते हैं, अतः चारों गति का आयुष्य बाँध सकते हैं, परंतु वे युगलिक तिर्यंच मनुष्य में 56 अन्तर्द्वीप में ही जा सकते हैं, वहाँ युगलिकों का उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम के असंख्यात भाग जितना ही बाँध सकते हैं । वे जीव भवनपति-व्यंतर और पहली नरक के तीन प्रतर तक जा सकते हैं । इस कारण वे जीव देव-नरक का आयुष्य उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितना ही बाँध सकते हैं ।

आयुष्य का अबाधा काल

असंख्य वर्ष के निरुपक्रमी आयुष्यवाले देव-नारक व युगलिक तिर्यंच

मनुष्य अपना छह मास का आयुष्य बाकी रहने परभव का आयुष्य बाँधते हैं अतः उन जीवों को परभव आयुष्य की अबाधा छह मास की होती है ।

संख्यात वर्ष के निरुपक्रम आयुष्य वाले तिर्यंच-मनुष्य अपने आयुष्य के 2/3 भाग बीतने पर 1/3 भाग आयुष्य बाकी रहने परभव का आयुष्य बाँधते हैं ।

सोपक्रम आयुष्यवाले तिर्यंच-मनुष्य अपने आयुष्य के 2 भाग बीतने पर तीसरा भाग बाकी रहने पर या नौ-सत्ताईसवाँ आदि तीन गुणा करते हुए अंत में अन्तर्मुहूर्त आयुष्य बाकी रहने पर परभव का आयुष्य बाँधते हैं ।

लहुठिइबंधो सजलणलोह पण विग्घनाणदंसेसु ।
भिन्नमुहुत्तं ते अट्ठ जसुच्चे बारस य साए ।।35।।

—: शब्दार्थ :—

लहुठिइबंधो=जघन्य स्थितिबन्ध,	**अट्ठ**=आठ मुहूर्त,
संजलणलोह=संज्वलन लोभ,	**जसुच्चे**=यशःकीर्ति और उच्च
पणविग्ध=पाँच अन्तराय,	गोत्र का,
नाणदंसेसु=ज्ञानावरण और	**बारस**=बारह मुहूर्त,
दर्शनावरण का,	**य**=और,
भिन्नमुहुर्त=अन्तर्मुहूर्त,	**साए**=साता वेदनीय का,
ते=वह,	

भावार्थ :—संज्वलन लोभ, पाँच अंतराय, पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरण का जघन्य स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त है । यशःकीर्ति नामकर्म और उच्च गोत्र का आठ मुहूर्त तथा साता वेदनीय का बारह मुहूर्त जघन्य स्थितिबंध है ।

विवेचन :—क्षपक श्रेणी में नौवें गुणस्थानक के अंतिम समय में संज्वलन लोभ का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थितिबंध होता है ।

दसवें गुणस्थानक के अंतिम समय में ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4 व अंतराय की 5, इन 14 प्रकृतियों का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण; यश नाम व उच्च गोत्र का 8 मुहूर्त, शाता वेदनीय का 12 मुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थितिबंध होता है ।

दो इगमासो पक्खो संजलणतिगे पुमट्ठवरिसाणि ।
सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्ततिईइ जं लद्धं ।।36।।

–: शब्दार्थ :–

दोइगमासो=दो मास और एक मास,	**उक्कोसाओ**=अपनी उत्कृष्ट स्थिति में,
पक्खो=पक्ष (पखवाड़ा),	**मिच्छत्ततिईइ**=मिथ्यात्व की स्थिति का भाग देने से,
संजलणतिगे=संज्वलनत्रिक की,	**जं**=जो,
पु=पुरुषवेद,	**लद्धं**=लब्ध प्राप्त हो ।
अट्ठ=आठ,	
वरिसाणि=वर्ष,	
सेसाण=शेष प्रकृतियो की,	

भावार्थ :–संज्वलनत्रिक की जघन्य स्थिति क्रम से दो मास, एक मास और एक पक्ष है । पुरुष वेद की आठ वर्ष तथा शेष प्रकृतियो की जघन्य स्थिति उनकी उत्कृष्ट स्थिति में मिथ्यात्व मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति के द्वारा भाग देने पर प्राप्त लब्ध के बराबर है ।

विवेचन :–अपने बंध विच्छेद के नौवें गुणस्थानक में संज्वलन क्रोध का जघन्य स्थितिबंध दो मास, संज्वलन मान का एक मास, संज्वलन माया का 15 दिन और पुरुष वेद का आठ वर्ष है ।

तीर्थंकर नाम कर्म व आहारक द्विक आदि 3 प्रकृति
संज्वलन लोभ आदि 18 प्रकृति
संज्वलन क्रोध आदि 4 प्रकृति
तथा वैक्रिय षट्क व चार आयु आदि 10 प्रकृति

इन 35 प्रकृतियों के सिवाय बंध योग्य (120-35) 85 प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध निम्नानुसार है–

85 उत्तर प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबंध में मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति का भाग देने पर जो आए उसमें से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग घटाने पर उन-उन प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध आता है ।

निद्रा पंचक व असाता वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध 3/7 सागरोपम
मिथ्यात्व का जघन्य स्थिति बंध 1 सागरोपम

अनंतानुबंधी क्रोध आदि 12 कषायों का जघन्य स्थिति बंध 4/7 सागरोपम
स्त्रीवेद और मनुष्यद्विक का जघन्य स्थिति बंध 3/14 सागरोपम
सूक्ष्मत्रिक व विकलत्रिक का जघन्य स्थिति बंध 9/35 सागरोपम
स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति,
शुभ विहायोगति, वज्र ऋषभ नाराच, समचतुरस्त्र,
सुगंध, शुक्ल वर्ण, मधुर रस, मृदु, लघु, स्निग्ध
और उष्ण स्पर्श का जघन्य स्थितिबंध 1/7 सागरोपम
शुभ व अशुभ वर्णादि चतुष्क का जघन्य स्थितिबंध 2/7 सागरोपम
दूसरे संस्थान व संघयण का जघन्य स्थितिबंध 6/35 सागरोपम
तीसरे संस्थान व संघयण का जघन्य स्थितिबंध 7/35 सागरोपम
चौथे संस्थान व संघयण का जघन्य स्थितिबंध 8/35 सागरोपम
पांचवे संस्थान व संघयण का जघन्य स्थितिबंध 9/35 सागरोपम
तथा शेष प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध 2/7 सागरोपम

इन 85 प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव ही कर सकते हैं। इस जघन्य स्थिति में पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग बढ़ाने पर एकेन्द्रिय जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है ।

अयमुक्कोसो गिंदिसु पलियासंखंसहीण लहुबंधो ।
कमसो पणवीसाए पन्नासयसहस्ससंगुणिओ ।।37।।
विगलिअसन्निसु जिट्ठो कणिट्ठउ पल्लसंखभागूणो ।
सुरनरयाउ समादससहस्स सेसाउ खुड्डभवं ।।38।।

–: शब्दार्थ :–

अयं=यह (पूर्वोक्त रीति से बताया गया),
उक्कोसो=उत्कृष्ट स्थितिबन्ध,
गिंदिसु=एकेन्द्रिय का,
पलियासंखंसहीण=पल्योपम के असंख्यातवें भाग हीन,
लहुबंधो=जघन्य स्थिति बंध,
कमसो=अनुक्रम से,
पणवीसाए=पच्चीस से,
पन्ना=पचास से,
सय=सौ से,
सहस्स=हजार से,
संगुणिओ=गुणा करने पर,
विगलिअसन्निसु=विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय का,

जिट्ठो=उत्कृष्ट स्थितिबंध,	**समा**=वर्ष,
कणिट्ठउ=जघन्य स्थितिबंध,	**दससहस्स**=दस हजार
पल्ल संखभागूणो=पल्योपम के संख्यातवें भाग को कम करने से,	**सेसाउ**=बाकी की आयु की,
सुरनरयाउ=देवायु और नरकायु की,	**खुड्डभवं**=क्षुद्रभव

भावार्थ :–एकेन्द्रिय जीवों के पूर्वोक्त स्थितिबंध उत्कृष्ट और जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम समझना चाहिए तथा अनुक्रम से पच्चीस, पचास, सौ, हजार से गुणा करने पर विकलेन्द्रियों और असंज्ञी पंचेन्द्रिय का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है तथा जघन्य स्थितिबंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग न्यून है। देवायु और नरकायु की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष तथा शेष आयुओं की क्षुद्रभव प्रमाण है ।

विवेचन :–पहले की गाथा में एकेन्द्रिय की विभिन्न प्रकृतियों का जो 3/7 सागरोपम आदि उत्कृष्ट बंध बताया है, उसमें पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम कर देने पर एकेन्द्रिय जीवों की जघन्य स्थिति हो जाती है ।

बेइन्द्रिय का जघन्य-उत्कृष्ट बंध : एकेन्द्रिय जीव 129 में से जिस प्रकृति का जितना उत्कृष्ट बंध करता है, उससे बेइन्द्रिय जीव 25 गुणा अधिक उत्कृष्ट बंध करता है, उस उत्कृष्ट बंध में पल्योपम का संख्यातवाँ भाग कम करने पर बेइन्द्रिय का जघन्य स्थितिबंध होता है ।

उदा. बेइन्द्रिय जीव मिथ्यात्व का उत्कष्ट बंध 25 सागरोपम व जघन्य बंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग न्यून 25 सागरोपम करता है ।

तेइन्द्रिय का जघन्य-उत्कृष्ट बंध :

एकेन्द्रिय जीवों के उत्कृष्ट स्थितिबंध की अपेक्षा तेइन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट स्थिति बंध 50 गुणा अधिक है और जघन्य स्थिति बंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग कम है ।

उदा. तेइन्द्रिय का मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध 50 सागरोपम व जघन्य पल्योपम के संख्यातवाँ भाग न्यून 50 सागरोपम है ।

चउरिन्द्रिय का जघन्य-उत्कृष्ट बंध :

एकेन्द्रिय की अपेक्षा चउरिन्द्रिय का उत्कृष्ट बंध 100 गुणा अधिक है। तथा जघन्य बंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग न्यून है।

उदा. चतुरिन्द्रिय का मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध सागरोपम व जघन्य पल्योपम का संख्यातवाँ भाग न्यून 100 सागरोपम है।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय का जघन्य-उत्कृष्ट स्थितिबंध :-

एकेन्द्रिय की अपेक्षा असंज्ञी पंचेन्द्रिय का उत्कृष्ट स्थितिबंध 1000 गुणा अधिक है तथा जघन्य स्थितिबंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग न्युन है।

उदा. असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को मिथ्यात्व का उत्कृष्ट बंध 1000 सागरोपम तथा जघन्य बंध पल्योपम का संख्यातवाँ भाग न्यून 1000 सागरोपम होता है।

सव्वाणवि लहुबंधे भिन्नमुहू अबाह आउजिट्ठे वि।
केइ सुराउसमं जिणमंतमुहू बिंति आहारं ।।39।।

–: शब्दार्थ :–

सव्वाण=सब प्रकृतियों की,	**केइ**=कुछ एक,
वि=तथा,	**सुराउसमं**=देवायु के समान,
लहुबंधे=जघन्य स्थितिबंध की,	**जिणं**=तीर्थंकर नामकर्म की,
भिन्नमुहू=अन्तर्मुहूर्त,	**अंतमुहू**=अन्तर्मुहूर्त,
अबाह=अबाधाकाल,	**बिंति**=कहते हैं,
आउजिट्ठेवि=आयु के उत्कृष्ट स्थितिबंध की भी,	**आहारं**=आहारकद्विक की।

भावार्थ :–समस्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबंध की अन्तर्मुहूर्त की अबाधा होती है। आयुकर्म के उत्कृष्ट स्थिति बंध की जघन्य अबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। किन्हीं आचार्यों के मत में तीर्थंकर नामकर्म की जघन्य स्थिति देवायु की जघन्य स्थिति के समान दस हजार वर्ष की है और आहारकद्विक की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

विवेचन :–उत्तर प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबंध में जघन्य अबाधा

अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है ।

आयुष्य की अबाधा में चार विकल्प हैं–

(1) उत्कृष्ट स्थिति में उत्कृष्ट अबाधा (2) उत्कृष्ट स्थिति में जघन्य अबाधा (3) जघन्य स्थिति में उत्कृष्ट अबाधा (4) जघन्य स्थिति में जघन्य अबाधा । उदा.

(1) जब कोई मनुष्य अपने पूर्व करोड वर्ष के आयुष्य में तीसरा भाग शेष रहने पर 33 सागरोपम के आयुष्य का बंध करता है तो वह उत्कृष्ट स्थिति में उत्कृष्ट अबाधा है ।

(2) सिर्फ अन्तर्मुहूर्त आयुष्य बाकी रहने पर 33 सागरोपम का आयुष्य बाँधता है तो उत्कृष्ट स्थिति में जघन्य अबाधा है ।

(3) जब कोई मनुष्य एक करोड पूर्व वर्ष के आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर आगामी भव के अन्तर्मुहूर्त का आयुष्य बाँधता है तो वह जघन्य स्थिति में उत्कृष्ट अबाधा है ।

(4) जब कोई मनुष्य अपना अन्तर्मुहूर्त आयुष्य बाकी रहने पर आगामी भव के अन्तर्मुहूर्त का आयुष्य बाँधता है तो वह जघन्य स्थिति में जघन्य अबाधा है ।

पहले तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक की जघन्य स्थिति अंतः कोड़ाकोड़ी सागरोपम कही थी अब यहाँ मतांतर बताते हुए कहते हैं-

तीर्थंकर नामकर्म सहित देवायु व नरकायु की जघन्य स्थिति 10000 वर्ष है ।

सत्तरससमहिया किर इगाणुपाणुमि हुंति खुड्डभवा ।
सगतीससयत्तिहुत्तर पाणु पुण इगमुहुत्तंमि ।।40।।
पणसट्ठिसहस्सपणसय छत्तीसा इगमुहुत्तखुड्डभवा ।
आवलियाणं दोसय छप्पन्ना एगखुड्डभवे ।।41।।

–: शब्दार्थ :–

सत्तरस=सत्रह,
समहिया=कुछ अधिक,
किर=निश्चय से,
इगाणुपाणुमि=एक श्वासोच्छ्वास में,
हुंति=होते हैं,
खुड्डभवा=क्षुल्लक भव,

सगतीससयतिहुतर=सैंतीस सौ तिहत्तर,	**इगमुहुत्त**=एक मुहूर्त में,
पाणु=प्राण, श्वासोच्छ्वास,	**खुड्डभवा**=क्षुद्रभव,
इगमुहुत्तंमि=एक मुहूर्त में,	**आवलियाणं**=आवलिका,
पणसट्ठिसहस्स=पैंसठ हजार,	**दोसय**=दो सौ,
पणसय=पाँच सौ,	**छप्पन्ना**=छप्पन
छत्तीसा=छत्तीस,	**एगखुड्डभवे**=एक क्षुद्रभव में ।

भावार्थ :–एक श्वासोच्छ्वास में निश्चित रूप से कुछ अधिक सत्रह क्षुद्रभव और एक मुहूर्त में सैंतीस सौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास होते हैं । तथा-

एक मुहूर्त में पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस क्षुद्रभव होते हैं और एक क्षुद्रभव में दो सौ छप्पन आवली होती है ।

विवेचन :–काल के अविभाज्य भाग को समय कहते हैं ।

असंख्य समय = 1 आवलिका

256 आवलिका = एक क्षुल्लक भव

इस संसार में निगोद के जीव का सबसे छोटा आयुष्य होता है-उसे क्षुल्लक भव भी कहते हैं ।

17½ क्षुल्लक भव = 1 श्वासोच्छ्वास

7 श्वासोच्छ्वास = 1 स्तोक

7 स्तोक = 1 लव

1 लव = 49 श्वासोच्छ्वास

77 लव = दो घडी

एक मुहूर्त में स्वस्थ युवा पुरुष के 3773 श्वासोच्छ्वास होते हैं, अतः एक मुहूर्त में क्षुल्लक भव 65536 होते हैं ।

1 मिनिट में 1365 क्षुल्लक भव होते हैं ।

अविरयसम्मो तित्थं आहारदुगामराउ य पमत्तो ।
मिच्छदिट्ठी बंधइ जिट्ठठिई सेसपयडीणं ।।42।।

—: शब्दार्थ :—

अविरयसम्मो=अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य,	**पमत्तो**=प्रमत्तविरति,
तित्थं=तीर्थंकर नामकर्म को,	**मिच्छदिट्ठी**=मिथ्यादृष्टि,
आहारदुगं=आहारकदिक,	**बंधइ**=बाँधता है,
अमराउ=देवायु को,	**जिट्ठठिई**=उत्कृष्ट स्थिति,
य=और,	**सेसपयडीणं**=शेष प्रकृतियों की ।

भावार्थ :—अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थंकर नामकर्म के प्रमत्तविरति, आहारकद्विक और देवायु के और मिथ्यादृष्टि शेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबंध को करता है ।

विवेचन :—पहले नरक आयुष्य का बंधकर फिर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त कर फिर नरक में जाते समय सम्यक्त्व का वमन कर मिथ्यात्व प्राप्त करता है, उस समय अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थंकर नामकर्म का उत्कृष्ट बंध अंतःकोड़ा कोड़ी सागरोपम का करता है ।

उत्कृष्ट स्थिति का बंध संक्लिष्ट परिणाम में ही होता है । यद्यपि चौथे से पहले गुणस्थान में आने पर संक्लिष्ट परिणाम बढ़ जाते हैं, परंतु मिथ्यात्व दशा में तीर्थंकर नामकर्म का बंध नहीं होता है ।

तीर्थंकर प्रकृति के बंधक मनुष्य को उत्कृष्ट संक्लेश नरकायु बँधे हुए मिथ्यात्व के अभिमुख जाते समय ही होता है ।

संक्लेश बढ़ने से प्रमत्तसंयत गुणस्थानक के अभिमुख हुए अप्रमत्त संयमी को अप्रमत्त गुणस्थान के अंतिम समय में आहारक द्विक की उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है ।

अप्रमत्त गुणस्थान के अभिमुख हुए प्रमत्तसंयमी मुनि को ही देवायु की उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है ।

अप्रमत्त गुणस्थान में देवायु के बंध का प्रारंभ नहीं होता है, परंतु प्रमत्त

गुणस्थान में प्रारंभ हुए देवायु का बंध अप्रमत्त में पूर्ण हो सकता है ।

आहारक द्विक, तीर्थंकर और देवायु को छोड़कर शेष 116 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध मिथ्यादृष्टि ही करता है ।

उत्कृष्ट स्थितिबंध संक्लेश परिणामों से होता है । मनुष्य आयु और तिर्यंच आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशुद्धि से होता है अतः इन दोनों का बंधक संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि न होकर विशुद्ध परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव होता है ।

मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि के परिणाम विशुद्ध होते हैं, परंतु वे मनुष्य आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध नहीं करते हैं । मनुष्य-तिर्यंच का उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम है, जो युगलिक मनुष्य-तिर्यंचों की होती है ।

चौथे गुणस्थानकवाले देव व नारक मनुष्य आयु बाँधने पर कर्मभूमि में ही जन्म लेते हैं ।

मनुष्य-तिर्यंच सम्यग्दृष्टि तो देव आयु का बंध करते हैं, अतः चौथे गुणस्थान की विशुद्धि देवायु की उत्कृष्ट आयु का बंध नहीं करती है ।

सास्वादन गुणस्थान, सम्यक्त्व से वमन करते समय मिथ्यात्व के अभिमुख होने पर होता है, वहाँ भी सम्यक्त्व की अपेक्षा विशुद्धि नहीं होती है, तिर्यंचगति के उत्कृष्ट आयुष्य का बंध भी सास्वादन सम्यग्दृष्टि को नहीं हो सकता है ।

विगलसुहुमाउगतिगं तिरिमणुया सुरविउव्विनिरयदुगं ।
एगिंदियावरायव आईसाणा सुरुक्कोसं ।।43।।

–: शब्दार्थ :–

विगलसुहुमाउगतिगं=विकलत्रिक, सूक्ष्मत्रिक और आयुत्रिक,	**एगिंदियावरायव**=एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप नामकर्म,
तिरिमणुया=तिर्यंच और मनुष्य,	**आईसाणा**=ईशान तक के,
सुरविउव्विनिरयदुगं=देवद्विक, वैक्रियद्विक, नरकद्विक को,	**सुर**=देव,
	उक्कोसं=उत्कृष्ट स्थितिबंध ।

भावार्थ :–मिथ्यात्वी तिर्यंच और मनुष्य विकलेन्द्रियत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, आयुत्रिक तथा देवद्विक, वैक्रियद्विक और नरकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति को बाँधते हैं । ईशान देवलोक तक के देव एकेन्द्रिय जाति, स्थावर और आतप नामकर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध करते हैं ।

विवेचन :–मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य विकलत्रिक (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त) आयुत्रिक (नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु) देवद्विक (देवगति-देवानुपूर्वी) वैक्रियद्विक वैक्रिय शरीर व वैक्रिय अंगोपांग) इन पंद्रह प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति का बंध करते हैं ।

देव व नरकगति में उपर्युक्त 13 में तिर्यंचायु व मनुष्यायु को छोडकर 13 का बंध नहीं होता है । नारक व देव मरकर भोगभूमि में पैदा नहीं होते हैं अतः इन 15 प्रकृतियों का उत्कृष्ट बंध मनुष्य व तिर्यंच को ही होता है ।

एकेन्द्रिय स्थावर व आतप नाम कर्म का बंध ईशान देवलोक तक के देवता करते हैं, क्योंकि ऊपर के देव एकेन्द्रिय में जन्म नहीं लेते हैं ।

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और ईशान देवलोक के देवता ही एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

तिरिउरलदुगुज्जोयं छिवट्ठ सुरनिरय सेस चउगइया ।
आहार जिणमपुव्वोऽनियट्टि संजलण पुरिस लहुं ।।44।।
सायजसुच्चावरणा विग्घं सुहुमो विउव्विछ असन्नी ।
सन्नीवि आउ बायरपज्जेगिंदिउ सेसाणं ।।45।।

–: शब्दार्थ :–

तिरिउरलदुग=तिर्यंचद्विक और औदारिकद्विक,
उज्जोयं=उद्योत नामकर्म,
छिवट्ठ=सेवार्तसंहनन,
सुरनिरय=देव और नारक,
सेस=बाकी की,
चउगइया=चारों गति के मिथ्यादृष्टि,
आहारजिणं=आहारकद्विक और तीर्थंकर नामकर्म को,
अपुव्वो=अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती,
अनियट्टि=अनिवृत्ति बादर संपरायवाला,
संजलण पुरिस=संज्वलन कषाय और पुरुषवेद का,

लहुं=जघन्य स्थितिबंध,	**असन्नी**=असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त,
सायजसुच्च=साता वेदनीय, यश,	**सन्नी**=संज्ञी
कीर्ति, नामकर्म, उच्च गोत्र,	**वि**=भी
आवरणा विग्घं=ज्ञानावरण पांच,	**आउ**=चार आयु का
दर्शनावरण चार और अंतराय पांच,	**बायरपज्जेगिंदि**=बादर पर्याप्त
सुहुमो=सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान	एकेन्द्रिय,
वाला,	**उ**=और,
विउव्विछ=वैकियषट्क	**सेसाणं**=शेष प्रकृतियो को ।

भावार्थ :–तिर्यंचद्विक, औदारिकद्विक, उद्योत नाम, सेवार्त संहनन का उत्कृष्ट स्थितिबंध मिथ्यात्वी देव और नारक और बाकी की 62 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध चारों गति वाले मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

आहारकद्विक और तीर्थंकर नामकर्म का जघन्य स्थितिबंध अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में तथा संज्वलन कषाय और पुरुषवेद का जघन्य स्थितिबंध अनिवृत्तिबादर नामक नौवें गुणस्थान में होता है ।

साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र, पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पांच अंतराय इन प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के अंत में होता है । वैक्रियषट्क का जघन्य स्थितिबंध असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच करता है, चार आयुओं का जघन्य स्थितिबंध संज्ञी और असंज्ञी दोनों ही करते हैं । तथा शेष प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव करता है ।

विवेचन :–तिर्यंचद्विक (तिर्यंचगति और तिर्यंचानुपूर्वी) औदारिकद्विक (औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग) उद्योत नामकर्म तथा सेवार्त संघयण इन छह प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति का बंध देवता व नारक ही करते हैं ।

अतिसंक्लिष्ट परिणाम होने पर भी मनुष्य व तिर्यंच अधिकतम अठारह सागरोपम की ही स्थिति का बंध करते हैं, अधिक संक्लिष्ट परिणाम हों तो नरकगति योग्य प्रकृतियों का ही बंध करते हैं ।

देव व नारक अतिसंक्लिष्ट परिणाम होने पर भी नरक गति प्रायोग्य प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं, वे तिर्यंच प्रायोग्य प्रकृतियों का ही बंध कर

सकते हैं ।

इन छह प्रकृतियों का उत्कृष्ट बंध भी ईशान के ऊपर के देव ही सेवार्त संघयण व औदारिक अंगोपांग का उत्कृष्ट स्थितिबंध करते हैं ।

सनत्कुमार आदि के देव उत्कृष्ट संक्लेश होने पर भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के योग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं, एकेन्द्रिय में उनका जन्म नहीं होने से एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं ।

अतः सेवार्त संघयण व औदारिक अंगोपांग इन दो प्रकृतियों की 20 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति का बंध उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले सनत्कुमार आदि स्वर्गों के देव ही कर सकते हैं, नीचे के देव नहीं करते हैं ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के बँधने योग्य 116 प्रकृतियों में से पूर्वोक्त विकलत्रिक आदि सेवार्त संघयण पर्यंत 24 प्रकृतियों को छोड़ 92 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

जघन्य स्थितिबंध का स्वामित्व :

जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबंध के लिए उत्कृष्ट संक्लेश चाहिए, उसी प्रकार जघन्य स्थितिबंध के लिए उत्कृष्ट विशुद्धि चाहिए ।

आहारक द्विक और तीर्थंकर नामकर्म का जघन्य स्थितिबंध आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में होता है, क्योंकि उस गुणस्थान में जीव के विशुद्ध परिणाम होते हैं ।

संज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ और पुरुष वेद का जघन्य स्थितिबंध नौवें गुणस्थान में होता है ।

उपर्युक्त आठ प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबंध के स्वामी क्षपक श्रेणीवाले लेने चाहिए न कि उपशम श्रेणीवाले ।

सातावेदनीय, यशनाम, उच्चगोत्र, मतिज्ञानावरण आदि पाँच ज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण आदि चार दर्शनावरणीय तथा दानांतराय आदि पाँच अंतराय इन सत्रह प्रकृतियों की जघन्य स्थितिबंध के स्वामी क्षपकश्रेणी-गत दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानवाले हैं ।

यद्यपि सातावेदनीय का बंध तेरहवें गुणस्थान में भी होता है, परंतु स्थितिबंध दसवें गुणस्थान तक ही होता है ।

आयुष्य की चारों प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध असंज्ञी व संज्ञी जीव करते हैं। उनमें देवायु व नरकायु का जघन्य स्थितिबंध तिर्यंच व मनुष्य करते हैं तथा मनुष्य व तिर्यंच का जघन्य स्थितिबंध एकेन्द्रिय आदि करते है ।

इस प्रकार आहारक द्विक से आयुचतुष्क तक 35 प्रकृतियों को छोड़ शेष 85 प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव करते है ।

उक्कोसजहन्नेयरभंगा साइ अणाइ धुव अधुवा ।
चउहा सग अजहन्नो सेसतिगे आउचउसु दुहा ।।46।।

—: शब्दार्थ :—

उक्कोसजहन्न=उत्कृष्ट और जघन्य बंध,
इयर=प्रतिपक्षी (अनुत्कृष्ट, अजघन्य बंध),
भंगा=भंग,
साइ=सादि,
अणाइ=अनादि,
धुव=ध्रुव,
अधुवा=अध्रुव,
चउहा=चार प्रकार,
सग=सात मूल प्रकृतियों के,
अजहन्नो=अजघन्य बंध,
सेसतिगे=बाकी के तीन,
आउचउसु=चार आयु में,
दूहा=दो प्रकार

भावार्थ :—उत्कृष्ट, जघन्य, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, यह बंध के ये चार भेद हैं अथवा दूसरी प्रकार से सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये बंध के चार भेद हैं। सात कर्मों का अजघन्य बंध चार प्रकार का होता है। बाकी के तीन बंध और आयु कर्म के चारो बंध सादि और अध्रुव इस तरह दो ही प्रकार के होतै हैं ।

विवेचन :—स्थितिबंध के चार प्रकार हैं :—

(1) जघन्य स्थितिबंध (2) अजघन्य स्थितिबंध

(3) उत्कृष्ट स्थितिबंध (4) अनुत्कृष्ट स्थितिबंध

किसी भी प्रकृति के कम-से-कम बंध को जघन्य स्थितिबंध कहते हैं और उसके बाद के प्रत्येक समय से लेकर उत्कृष्ट स्थितिबंध तक के प्रत्येक बंध को अजघन्य स्थितिबंध कहते हैं ।

किसी भी प्रकृति के सबसे अधिक स्थिति के बंध को उत्कृष्ट स्थिति बंध कहते हैं और उस उत्कृष्ट में एक समय न्यून आदि से लेकर जघन्य स्थिति बंध के प्रत्येक बंध को अनुत्कृष्ट स्थितिबंध कहते है ।

सादि आदि 4 भंग

(1) जिस बंध का प्रारंभ होता है, उसे सादि बंध कहते हैं ।

(2) जो बंध अनादि काल से चालू हो उसे अनादि बंध कहते हैं ।

(3) जो बंध अनादि काल से चालू हो और अभव्य की अपेक्षा कभी बंद होनेवाला न हो उसे ध्रुव बंध कहते हैं ।

(4) जो बंध भविष्य में बंद होनेवाला हो उसे अध्रुव बंध कहते हैं ।

आठों कर्मों में उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, जघन्य-अजघन्य ये चारों बंध होते है ।

आयु कर्म को छोड़ शेष सात कर्मों का अजघन्य बंध सादि-अनादि, ध्रुव-अध्रुव चारों प्रकार का होता है ।

मोहनीय कर्म का जघन्य बंध नौवें गुणस्थान के अंत में तथा शेष छह कर्मों का जघन्य बंध दसवें गुणस्थान के अंत में होता है ।

अन्य गुणस्थानों व उपशम श्रेणी में सात कर्मों का अजघन्य बंध होता है ।

ग्यारहवें गुणस्थान में अजघन्य बंध न कर वहां से च्युत होकर जब जीव सात कर्मों का अजघन्यबंध करता है तब यह बंध सादि कहलाता है ।

नौवें-दसवें गुणस्थानों में आने से पहले सात कर्मों का जो अजघन्य बंध होता है वह अनादि काल से होने के कारण अनादि कहलाता है ।

अभव्य को बंध का अंत नहीं होता, अतः उसका अजघन्य बंध ध्रुव तथा भव्य को बंध का अंत होने से अध्रुव कहलाता है ।

अजघन्य को छोड़ शेष तीन बंध भेदों में सादि व अध्रुव दो भेद होते हैं ।

मोहनीय कर्म का नौवें गुणस्थान के अंत में व अन्य छह कर्मों का दसवें

के अंत में जघन्य स्थितिबंध होता है, उसके पहले नहीं, अतः वह बंध सादि तथा बारहवें गुणस्थान में उसका सर्वथा अभाव होने से अध्रुव है ।

उत्कृष्ट स्थिति बंध मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय को कभी होता है, हमेशा नहीं अतः सादि है । अन्तर्मुहूर्त बाद अनुत्कृष्ट बंध हो जाने से अध्रुव है । अतः उत्कृष्ट स्थितिबंध में सादि व अध्रुव दो विकल्प हैं ।

उत्कृष्ट के बाद अनुत्कृष्ट बंध होने से वह सादि है । न्यूनतम अन्तर्मुहूर्त व अधिकतम अनंत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी बाद उत्कृष्ट बंध होने से अनुत्कृष्ट बंध अध्रुव होता है ।

उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट दोनों सादि व अध्रुव हैं ।

आयुष्य कर्म का बंध निरंतर नहीं होता है और बंधकाल भी अन्तर्मुहूर्त है, अतः सादि व अध्रुव है ।

मूल कर्म के उत्कृष्ट आदि स्थितिबंध में सादि अनादि भंग

स्थिति बंध	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	कुल
ज्ञानावरणीय 7 कर्म का अजघन्यस्थिति बंध	7	7	7	7	28
आयुष्य का अजघन्यस्थिति बंध	1			1	2
ज्ञानावरणीय 8 का जघन्यस्थिति बंध	8			8	16
ज्ञानावरणीय 8 का उत्कृष्टस्थिति बंध	8			8	16
ज्ञानावरणीय 8 का अनुत्कृष्टस्थिति बंध	8			8	16
कुल	32	+7	+7	+32	78

चउभेओ अजहन्नो संजलणावरणनवगविग्घाणं ।
सेसतिगि साइ अधुवो तह चउहा सेसपयडीणं ।।47।।

–: शब्दार्थ :–

चउभेओ=चारभेद,
अजहन्नो=अजघन्य बंध में,
संजलणावरणनवगविग्घाणं=संज्वलन कषाय, नौ आवरण और अन्तराय के,
सेसतिगि=शेष तीन बंधो में,
साइअधुवो=सादि और अध्रुव,
तह=वैसे ही,
चउहा=चारो बंध प्रकारो में,
सेसपयडीणं=बाकी की प्रकृतियों के,

भावार्थ :–संज्वलन कषाय चतुष्क, नौ आवरण (पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण) और पाँच अंतराय के अजघन्य बंध में चारों भेद होते हैं। शेष तीन बंधों के सादि और अध्रुव ये दो विकल्प तथा शेष प्रकृतियों के चारों बंधो के भी सादि और अध्रुव ये दो ही विकल्प होते हैं।

विवेचन :–संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, मतिज्ञानावरण आदि पाँच, चक्षु दर्शनावरण आदि चार, दानांतराय आदि 5 इस प्रकार इन अठारह प्रकृतियों में अजघन्य बंध के सादि, अनादि, ध्रुव-अध्रुव आदि चारों विकल्प होते हैं।

उपशम श्रेणी में अठारह प्रकृतियों का बंधविच्छेद कर वहाँ से च्युत होकर पुनः अजघन्य बंध करते हैं, तो वह बंध सादि और उपशम श्रेणि पर चढ़ने के पहले जो बंध होता है, वह अनादि है।

अभव्य की अपेक्षा वह बंध ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है। इस प्रकार अजघन्य बंध के चार विकल्प होते हैं।

इन अठारह प्रकृतियों के अजघन्य बंध के सिवाय शेष तीन बंधों के सादि व अध्रुव दो विकल्प होते हैं। नौवें गुणस्थानक में बंधविच्छेद के समय संज्वलन चतुष्क का जघन्य बंध होता है तथा ज्ञानावरण पंचक आदि 14 का जघन्यबंध दसवें गुणस्थानवर्ती क्षपक को होता है। यह बंध इसके पूर्व नहीं होता है, अतः सादि है और आगे के गुणस्थान में वह बंध रुक जाता है, अतः अध्रुव है। उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट बंध भी बदलते रहते हैं।

शेष 102 प्रकृतियों के उत्कृष्ट आदि चारों बंधों में सादि व अध्रुव दो भंग होते हैं।

पाँच निद्रा, मिथ्यात्व, प्रारंभ के 12 कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण इन 29 प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय करता है। अन्तर्मुहूर्त बाद वह अजघन्य बंध करता है। फिर विशुद्ध परिणाम होने पर जघन्यबंध करता है। इस प्रकार जघन्य अजघन्य के बदलने से सादि-अध्रुव दो बंध होते हैं।

इन 29 प्रकृतियों का उत्कृष्ट बंध पंचेन्द्रिय जीव करता है अन्तर्मुहूर्त बाद अनुत्कृष्ट बंध, फिर उत्कृष्ट बंध करता है। इस प्रकार बदलने से ये दोनों

बंध सादि व अध्रुव होते हैं ।

शेष 73 प्रकृतियाँ अध्रुवबंधी होने से उनमें जघन्य-अजघन्य उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट चारों स्थिति बंध सादि अध्रुव होते हैं ।

उत्तर प्रकृति के उत्कृष्टादि स्थिति बंध में सादि आदि भंग

स्थिति बंध	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	कुल
18 प्रकृति का अजघन्यस्थिति बंध	18	18	18	18	72
18 प्रकृति का जघन्यस्थिति बंध	18			18	36
18 प्रकृति का उत्कृष्टस्थिति बंध	18			18	36
18 प्रकृति का अनुत्कृष्टस्थिति बंध	18			18	36
102 प्रकृति का अजघन्यस्थिति बंध	102			102	204
102 प्रकृति का जघन्यस्थिति बंध	102			102	204
102 प्रकृति का उत्कृष्टस्थिति बंध	102			102	204
102 प्रकृति का अनुत्कृष्टस्थिति बंध	102			102	204
कुल	480	+18	+18	+480	996

साणाइअपुव्वंते अयरंतो कोडिकोडिओ न हिगो ।
बंधो न हु हीणो न य मिच्छे भव्वियरसन्निमि ।।48।।

–: शब्दार्थ :–

साणाइअपुव्वंते=सासादन से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक,
अयरंतो कोडिकोडिओ=अंतः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम से,
न हिगो=अधिक (बंध) नहीं होता है,
बंधो=बंध,
न हु=नहीं होता है,
हीणो=हीन,
न य=तथा नहीं होता है,
मिच्छ=मिथ्यादृष्टि,
भव्वियरसन्निमि=भव्य संज्ञी व इतर अभव्य संज्ञी में ।

भावार्थ :–सासादन से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक अन्तः कोड़ा कोड़ी सागरोपम से अधिक स्थितिबंध नहीं होता है और न हीनबंध होता है। मिथ्यादृष्टि भव्य संज्ञी और अभव्य संज्ञी के भी हीनबंध नहीं होता है ।

विवेचन :–एक समय न्यून 1 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम को उत्कृष्ट अंतः कोटाकोटि सागरोपम और 1 समय अधिक 1 करोड़ सागरोपम को जघन्य अंतः कोटा कोटि सागरोपम कहते हैं, शेष को मध्यम अंतः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम कहते हैं ।

सास्वादन से अपूर्वकरण गुणस्थानक तक जघन्य से अंतःकोड़ा-कोड़ी सागरोपम की स्थिति का बंध होता है, उससे कम नहीं !

पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक में ही मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का बंध कहा गया है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में भव्य-अभव्य संज्ञी को अंतः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम से कम स्थिति का बंध नहीं होता है ।

ग्रंथिदेश में रहे भव्य-अभव्य को ज्ञानावरणीय आदि 7 कर्मों का अंतः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का स्थिति बंध होता है, परंतु भव्य जीवों को अनिवृत्ति-करण के बाद जो अंतः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का स्थितिबंध होता है, वह मिथ्यात्व गुणस्थान का जघन्य स्थितिबंध होता है ।

भव्य संज्ञी मिथ्यादृष्टि और अभव्य संज्ञी मिथ्यादृष्टि के भी अंतः कोड़ा-कोड़ी सागरोपम से कम स्थितिबंध नहीं होता है ।

यहाँ भव्य संज्ञी के साथ मिथ्यादृष्टि का विशेषण लगाने से यह सिद्ध होता है कि भव्य संज्ञी को अनिवृत्तिबादर आदि गुणस्थानों में हीनबंध भी होता है ।

संज्ञी विशेषण का उद्देश्य यह है कि भव्य असंज्ञी को हीन स्थितिबंध होता है, अभव्य संज्ञी को तो अंतः कोड़ा-कोड़ी सागर से हीन स्थितिबंध नहीं होता है क्योंकि ग्रंथिभेद होने पर ही हीनबंध हो सकता है, परंतु अभव्य को ग्रंथिभेद होता नहीं है ।

जइलहुबंधो बायर पज्ज असंखगुण सुहुमपज्जहिगो ।
एसिं अपज्जाण लहू सुहूमेअरअपजपज्ज गुरु ।।49।।
लहु बिय पज्जअपज्जे अपजेयर बिय गुरु हिगो एवं ।
ति चउ असन्निसु नवरं संखगुणो बियअमणपज्जे ।।50।।
तो जइजिट्ठो बंधो संखगुणो देसविरय हस्सियरो ।
सम्मचउ सन्निचउरो ठिइबंधाणुकम संखगुणा ।।51।।

–: शब्दार्थ :–

जइलहुबंधो=साधु का जघन्य स्थितिबंध
बायर पज्ज=बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय,
असंखगुण=असंख्यात गुणा,
सुहुमपज्ज=सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय का
हिगो=विशेषाधिक,
एसिं=इनके (बादर सूक्ष्म एकेन्द्रिय के),
अपज्जाण=अपर्याप्त का,
लहू=जघन्य स्थितिबंध,
सुहूमेअरअपजपज्ज गुरु=सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध,
लहु=जघन्य स्थितिबंध,
बिय=द्वीन्द्रिय,
पज्जअपज्जे=पर्याप्त अपर्याप्त में,
अपजेयर=अपर्याप्त और,
इतर=पर्याप्त,
बियगुरु=द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट,
हिगो=अधिक,
एवं=इस प्रकार से
तिचउअसन्निसु=त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में,
नवरं=इतना विशेष,
संखगुणो=संख्यात गुणा,
बियअमणपज्जं=द्वीन्द्रिय पर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त में,
तो=उसकी अपेक्षा,
जइजिट्ठोबंधो=साधु का उत्कृष्ट स्थितिबंध,
संखगुणो=संख्यात गुणा,
देसविरयहस्स=देशविरति का जघन्य,
इयरो=उत्कृष्ट स्थितिबंध,
सम्मचउ=सम्यग्दृष्टि के चार प्रकार के स्थिति बंध,
सन्निचउरो=संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के चार,
ठिइबंधा=स्थिति बंध,
अणुकम=अनुक्रम से
संखगुणा=संख्यात गुणा

भावार्थ :–साधु का जघन्य स्थिति बंध सबसे अल्प होता है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य स्थितिबंध उससे असंख्यात गुणा और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का उससे विशेषाधिक होता है । इनके (बादर, सूक्ष्म एकेन्द्रिय के) अपर्याप्त का जघन्य स्थितिबंध उससे अधिक होता है । उसकी अपेक्षा सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध अनुक्रम से विशेषाधिक होता है ।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त का जघन्य स्थितिबंध उनकी अपेक्षा संख्यात गुणा और विशेषाधिक और उसकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय अपर्याप्त और पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेषाधिक, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में भी इसी प्रकार (द्वीन्द्रिय में कहे गये अनुसार) जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि द्वीन्द्रिय पर्याप्त और असंज्ञी अपर्याप्त में संख्यात गुणा समझना चाहिए ।

उसकी अपेक्षा साधु का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा और उसकी अपेक्षा देशविरति का जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबंध, सम्यग्दृष्टि के चारों स्थितिबंध और संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के चारों स्थितिबंध अनुक्रम से संख्यातगुणे होते हैं ।

विवेचन :–इन तीन गाथाओं में स्थितिबंध का अल्पबहुत्व बताते हैं ।

दसवें गुणस्थान में सूक्ष्म कषाय रहता है, दसवें गुणस्थान से हीन स्थितिबंध किसी भी जीव को नहीं होता है । ग्यारहवें आदि गुणस्थानों में एक समय का स्थितिबंध होता है, परंतु वह कषायरहित होने से स्थितिबंध में उसकी विवक्षा नहीं है ।

अल्प-बहुत्व

1. सबसे जघन्य स्थितिबंध सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में रहे साधु को होता है ।
2. उससे (दसवें गुणस्थानवर्ती) से बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य स्थितिबंध असंख्यात गुणा ।
3. उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।
4. उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।

5. उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।
6. उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय का कुछ अधिक होता है ।
7. उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।
8. उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।
9. उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।
10. उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।
11. उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त का कुछ अधिक होता है ।
12. उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
13. उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
14. उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
15. उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
16. उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
17. उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
18. उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
19. उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
20. उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
21. उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
22. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
23. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
24. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
25. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थिति बंध कुछ अधिक है ।
26. उससे संयत का उत्कृष्ट स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
27. उससे देशसंयत का जघन्य स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
28. उससे देशसंयत का उत्कृष्ट स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
29. उससे पर्याप्त सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।

30. उससे अपर्याप्त सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
31. उससे अपर्याप्त सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
32. उससे पर्याप्त सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
33. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
34. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि का जघन्य स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
35. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।
36. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट स्थिति बंध संख्यात गुणा है ।

यद्यपि जीवसमास के 14 भेद हैं, परंतु जघन्य व उत्कृष्ट के भेद से दो-दो स्थितियां होती हैं, अतः 28 भेद हुए । उसमें सम्यग्दृष्टि के चार, देश-विरति के दो, संयत का एक और सूक्ष्म संपराय का एक स्थान मिलाने से 36 स्थान हो जाते हैं ।

सव्वाण वि जिट्ठठिई असुमा जं साइसंकिलेसेण ।
इयरा विसोहिओ पुण मुत्तुं नरअमरतिरियाउं ।।52।।

—: शब्दार्थ :—

सव्वाण वि=सभी कर्म प्रकृतियों की,	**इयरा**=जघन्यस्थिति,
जिट्ठठिइ=उत्कृष्ट स्थिति,	**विसोहिओ**=विशुद्धि द्वारा,
असुभा=अशुभ,	**पुण**=तथा,
जं=इसलिए,	**मुत्तुं**=छोड़कर,
सा=वह (उत्कृष्ट स्थिति)	**नरअमरतिरियाउं**=मनुष्य, देव
अइसंकिलेसेण=तीव्र संक्लेश (कषाय) के उदय होने से,	और तिर्यंच आयु को

भावार्थ :—मनुष्य, देव और तिर्यंच आयु के सिवाय सभी प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति अति संक्लेश परिणामों से बँधने के कारण अशुभ कही जाती

है । जघन्य स्थिति का बंध विशुद्धि द्वारा होता है ।

विवेचन :–देव, मनुष्य और तिर्यंच आयुष्य को छोडकर शेष सभी प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति को अशुभ और जघन्य स्थिति को शुभ कहा है ।

प्रश्न : स्थितिबंध की तरह अनुभागबंध भी कषाय से होता है तो उत्कृष्ट स्थितिबंध की तरह उत्कृष्ट अनुभाग को भी अशुभ मानना चाहिए जबकि शुभ प्रकृतियों के अनुभाग को शुभ और अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग को अशुभ कहते हैं ।

उत्तर : कषाय की तीव्रता होने पर अशुभ प्रकृतियों में अनुभागबंध अधिक और शुभ प्रकृतियों में कम तथा कषायों की मंदता होने पर शुभ प्रकृतियों में अनुभागबंध अधिक और अशुभ प्रकृतियों में अनुभाग बंध कम होता है । अनुभाग बंध की हीन-अधिकता कषायों की हीनाधिकता पर निर्भर नहीं है ।

जब-जब शुभ प्रकृतियों में अनुभाग बंध उत्कृष्ट होता है, तब जघन्य स्थितिबंध होता है और अनुभागबंध जघन्य होता है, तब उत्कृष्ट स्थिति बंध होता है ।

शुभ प्रकृतियों में उत्कृष्ट अनुभागबंध का कारण कषायों की मंदता है, जघन्य अनुभाग बंध का कारण कषायों की तीव्रता है ।

अशुभ प्रकृतियों में अनुभाग बंध अधिक होने पर स्थिति भी अधिक होती है और अनुभाग बंध कम होने पर स्थिति भी कम होती है ।

देव, मनुष्य व तिर्यंच आयु की उत्कृष्ट स्थिति शुभ मानी जाती है उसका बंध विशुद्धि से होता है । उनका जघन्य स्थिति बंध अशुभ है, क्योंकि उसका बंध संक्लेश से होता है ।

सुहुमनिगोयाइखणाप्पजोग-बायरयविगलअमणमणा ।
अपज्ज लहु पढमदुगुरु पजहस्सियरो असंखगुणो ।।53।।
अपजत्त तसुक्कोसो पज्जजहन्नियरु एव ठिइठाणा ।
अपजेयर संखगुणा परमपजबिए असंखगुणा ।।54।।

–: शब्दार्थ :–

सुहुमनिगोय=सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक,	**आइखण**=प्रथम समय में (उत्पत्ति के),

अप्पजोग=अल्पयोग,	**अपजत्त**=अपर्याप्त,
बायर=बादर एकेन्द्रिय,	**तस**=त्रस का,
य=और,	**उक्कोसो**=उत्कृष्ट योग,
विगलअमणमणा=विकलत्रिक, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय,	**पज्जजहन्न**=पर्याप्त त्रस का जघन्य योग,
अपज्ज=अपर्याप्त के,	**इयरु**=और इतर (उत्कृष्ट योग)
लहु=जघन्य योग,	**एव**=इस प्रकार
पढमदु=प्रथमद्विक (अपर्याप्त सूक्ष्म, बादर) का,	**ठिइठाणा**=स्थिति के स्थान
गुरू=उत्कृष्ट योग,	**अपजेयर**=अपर्याप्त की अपेक्षा पर्याप्त के,
पजहस्सियरो=पर्याप्त का जघन्य और उत्कृष्ट योग,	**संखगुणा**=संख्यात गुणा,
असंखगुणो=असंख्यात गुणा,	**परं**=परन्तु,
	अपजबिए=अपर्याप्त द्वीन्द्रिय में,
	असंखगुणा=असंख्यात गुणा

भावार्थ :–सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीव को पहले समय में अल्प योग होता है, उसकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय, विकलत्रिक, असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्तक के पहले समय में क्रम से असंख्यात गुणा होता है। उसके अनन्तर प्रारम्भ के दो लब्ध्य पर्याप्त अर्थात् सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है। उससे दोनों ही पर्याप्त का जघन्य व उत्कृष्ट योग अनुक्रम से असंख्यात गुणा है।

उसकी अपेक्षा अपर्याप्त त्रस का उत्कृष्ट योग, पर्याप्त त्रस का जघन्य और उत्कृष्ट योग अनुक्रम से असंख्यात गुणा है। इसी प्रकार स्थिति स्थान भी अपर्याप्त और पर्याप्त के संख्यात गुणे होते हैं किन्तु अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के स्थिति स्थान असंख्यात गुणे हैं।

विवेचन :–योग अर्थात् संसारी जीव की शक्ति विशेष, जो कर्मों को ग्रहण करने में कारण है। योग के कारण ही आत्मा कर्म पुद्गलों को अपनी ओर खींचती है।

वीर्यांतराय कर्म क क्षय या क्षयोपशम से आत्मा में पैदा होनेवाली

शक्ति, जिससे जन्म समय जीव औदारिक आदि शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें औदारिक शरीर के रूप में बदलता है ।

पुद्गलों को ग्रहण करने के तीन निमित्त हैं-मन, वचन और काया, योग भी तीन प्रकार के हैं-मनोयोग, वचनयोग, और काय योग–

योगों का अल्प-बहुत्व :–

1. सूक्ष्म निगोद के लब्धि अपर्याप्त जीव को उत्पत्ति के प्रथम समय में सबसे जघन्य योग होता है ।
2. बादर निगोद एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त जीव को सूक्ष्म निगोद के लब्धि अपर्याप्त जीव के प्रथम समय के योग से असंख्यात गुणा योग होता है ।
3. उससे द्वीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
4. उससे त्रीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
5. उससे चतुरिन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
6. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
7. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
8. उससे सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
9. उससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
10. उससे सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
11. उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
12. उससे सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
13. उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
14. उससे द्वीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
15. उससे त्रीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
16. उससे चतुरिन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
17. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
18. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।

19. उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
20. उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
21. उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
22. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
23. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यात गुणा है ।
24. उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
25. उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
26. उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
27. उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
28. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
29. उससे अनुत्तर देवों का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
30. उससे ग्रैवेयक देवों का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
31. उससे भोगभूमि तिर्यंच मनुष्यों का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
32. उससे आहारक शरीर वालों का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
33. उससे देव का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
34. उससे नारक का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
35. उससे तिर्यंच का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।
36. उससे मनुष्य उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है ।

स्थिति स्थान–किसी कर्म प्रकृति की जघन्य स्थिति से लेकर एक एक समय बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत, स्थिति के जो भेद होते हैं, उन्हें स्थिति स्थान कहते हैं ।

ये स्थिति स्थान भी उत्तरोत्तर संख्यात गुणे हैं किंतु द्वीन्द्रिय अपर्याप्त के स्थिति स्थान असंख्यात गुणे हैं–

1. सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त के स्थिति स्थान सबसे कम हैं ।
2. उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
3. उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।

4. उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
5. उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त के स्थिति स्थान असंख्यात गुणे हैं ।
6. उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
7. उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
8. उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
9. उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
10. उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
11. उससे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
12. उससे पंचेन्द्रिय पर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
13. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।
14. उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के स्थिति स्थान संख्यात गुणे हैं ।

पइखणमसंखगुणविरिय अपज पइठिइमसंखलोगसमा ।
अज्झवसाया अहिया सत्तसु आउसु असंखगुणा ।।55।।

–: शब्दार्थ :–

पइखणं=प्रत्येक समय में,
असंखगुणविरिय=असंख्यात गुणा वीर्य वाले,
अपज=अपर्याप्त जीव,
पइठिइं=प्रत्येक स्थितिबंध में,
असंखलोगसमा=असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण,
अज्झवसाया=अध्यवसाय,
अहिया=अधिक,
सत्तसु=सात कर्मो में,
आउसु=आयुकर्म में,
असंखगुणा=असंख्यात गुणा ।

भावार्थ :–अपर्याप्त जीव प्रत्येक समय असंख्यात गुणे वीर्य वाले होते हैं और प्रत्येक स्थितिबंध में असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण अध्यवसाय होते हैं । सात कर्मों में तो स्थितिबंध के अध्यवसाय विशेषाधिक और आयुकर्म में असंख्यात गुणे होते हैं ।

विवेचन :–अपर्याप्त जीवों के योगस्थानों में प्रति समय असंख्यात गुणी वृद्धि होती है, परंतु पर्याप्त जीवों में ऐसा नहीं होता है ।

अपर्याप्त जीव को भव के प्रथम समय से दूसरे समय में असंख्य गुण अधिक वीर्य-व्यापार होता है, उससे तीसरे समय में असंख्य गुण अधिक, इस प्रकार अपर्याप्त अवस्था पूर्ण न हो तब तक असंख्य गुण अधिक योग होता है ।

अपर्याप्त जीव अपने योग्य योगस्थान में एक ही समय रहते हैं, जबकि पर्याप्त जीव अपने योग्य स्थानों में अधिक समय भी रह सकते हैं ।

स्थितिबंध के कारण कषायजन्य आत्मपरिणामों को अध्यवसाय स्थान कहते हैं । कषायों के तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मंद, मंदतर व मंदतम के भेद से अध्यवसाय स्थानों के भी अनेक भेद होते हैं ।

एक-एक स्थितिस्थान के कारण अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण है ।

आयुष्य कर्म को छोड़ सात कर्मों के अध्यवसाय स्थान विशेषाधिक है ।

उदा. ज्ञानावरण कर्म के जघन्य स्थिति स्थान (आठवें गुणस्थानक के अंतिम समय में) सबसे कम (फिर भी असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण) हैं, उससे 1 समय अधिक जघन्य स्थिति स्थान के अध्यवसाय स्थान विशेषाधिक है इस प्रकार 1-1 समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति के प्रत्येक स्थितिस्थान में स्थितिबंध के अध्यवसाय स्थान विशेषाधिक है ।

ज्ञानावरणीय की तरह दर्शनावरणीय आदि सातों कर्मों के द्वितीय आदि स्थिति से लेकर अपने उत्कृष्ट स्थितिबंध पर्यंत अध्यवसाय स्थानों की संख्या विशेषाधिक समझनी चाहिए ।

आयुष्य कर्म के अध्यवसाय स्थान उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे हैं । चारों आयुष्य के जघन्य स्थितिबंध के कारण अध्यवसाय स्थान असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं । उसके बाद दूसरे आदि स्थितिबंध के कारण अध्यवसाय स्थान उससे असंख्यात गुणे हैं ।

तिरिनिरयतिजोयाणं नरभवजुय सचउपल्ल तेसट्ठं ।
थावरचउइगविगलायवेसु पणसीइसयमयरा ।।56।।
अपढमसंघयणागिइखगइ अणमिच्छदुभगथीणतिगं ।
निय नपु इत्थि दुतीसं पंणिदिसु अबन्धठिइ परमा ।।57।।

–: शब्दार्थ :–

तिरिनरयति=तिर्यंचत्रिक और नरकत्रिक,
जोयाणं=उद्योत नामकर्म का,
नरभवजुय=मनुष्य भव सहित,
सचउपल्ल=चार पल्योपम सहित,
तेसट्ठं=त्रेसठ (अधिक सौ सागरोपम),
थावरचउ=स्थावर चतुष्क,
इगविगलायवेसु=एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और आतप नामकर्म में,
पणसीइसयं=एक सौ पचासी
अयरा=सागरोपम,
अपढमसंघयणागिइखगइ=पहले के सिवाय शेष संहनन और संस्थान और विहायोगति,
अण=अनंतानुबंधी कषाय,
मिच्छ=मिथ्यात्व मोहनीय,
दुभगथीणतिगं=दुर्भगत्रिक स्थानर्द्धित्रिक,
निय=नीच गोत्र,
नपुइत्थि=नपुंसकवेद, स्त्रीवेद,
दुतीसं=बत्तीस (नरभवसहित एकसौ बत्तीस सागरोपम)
पंणिदिसु=पंचेन्द्रिय में,
अबन्धठिइ=अबन्ध स्थिति
परमा=उत्कृष्ट

भावार्थ :–तिर्यंचत्रिक, नरकत्रिक और उद्योत नामकर्म का मनुष्य भव सहित चार पल्योपम अधिक एक सौ त्रेसठ सागरोपम उत्कृष्ट अबन्धकाल है। स्थावरचतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, विकलेन्द्रिय और आतप नामकर्म का मनुष्य भव सहित चार पल्योपम अधिक एक सौ पचासी सागरोपम उत्कृष्ट अबन्धकाल जानना चाहिए।

पहले संहनन और संस्थान व विहायोगति के सिवाय शेष पाँच संहनन, पाँच संस्थान विहायोगति, अनंतानुबंधी कषाय, मिथ्यात्व मोहनीय, दुर्भगत्रिक, नीच गोत्र, नपुंसकवेद और स्त्रीवेद की अबंधस्थिति मनुष्य भव सहित एक सौ बत्तीस सागरोपम है। इन प्रकृतियों की अबंधस्थिति पंचेन्द्रिय में जानना चाहिए।

विवेचन :–नरकत्रिक, जाति चतुष्क, स्थावर चतुष्क, हुंडक, आतप, सेवार्त संघयण, नपुंसक तथा मिथ्यात्व, इन 16 प्रकृतियों का बंध पहले गुणस्थानक में तथा तिर्यंच त्रिक, उद्योत, मध्यम चार संघयण, मध्यम चार

संस्थान, अशुभ विहायोगति, अनंतानुबंधी चार दुर्भगत्रिक, थीणद्धित्रिक, नीच गोत्र और स्त्रीवेद इन 25 का बंध दूसरे गुणस्थान में होता है । मिश्रादि गुणस्थानों में इनका बंध नहीं होता है । अतः संज्ञी पंचेन्द्रिय की अपेक्षा इन 41 प्रकृतियों का अबंध काल कहते हैं ।

तिर्यंचत्रिक, नरकत्रिक और उद्योत इन सात प्रकृतियों का अबंध काल मनुष्य भव सहित चार पल्य अधिक 163 सागरोपम है । उदा. कोई जीव तीन पल्योपम के आयुष्यवाला युगलिक तिर्यंच या मनुष्य हुआ वहाँ से देव भव में ही जाते हैं अतः इन 7 प्रकृतियों का बंध नहीं करता है । फिर सम्यक्त्व प्राप्त कर 1 पल्योपमवाला देव बना, वहाँ से सम्यक्त्व सहित मनुष्यभव प्राप्त कर नौवें भव में 31 सागरोपम आयुवाला देव बना । उत्पन्न होने के अन्तर्मुहूर्त बाद मिथ्यादृष्टि हो गया । वहाँ मरते समय क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त कर मनुष्य बनकर दीक्षा लेकर दो बार विजयादि में जन्म लेकर पुनः मनुष्य हुआ । वहां अन्तर्मुहूर्त के लिए सम्यक्त्व से च्युत होकर तीसरे गुणस्थान में गया । पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर तीन बार अच्युत में जन्म लिया । इस प्रकार–

ग्रैवेयक के 31 सागरोपम

दो बार विजयादि के 66 सागरोपम

तीन बार अच्युत के 66 सागरोपम जोड़ने पर 163 सागरोपम हुए । उसमें युगलिक के तीन पल्योपम व देवगति का एक पल्योपम जोड़ने पर चार पल्योपम तथा एक मनुष्य आयुष्य जोड़ने पर कुल 163 सागरोपम तथा चार पल्योपम से कुछ अधिक काल तक 7 प्रकृतियों का अबंध काल हुआ ।

स्थावर आदि 9 का अबंध काल :–

स्थावर चतुष्क एकेन्द्रिय, विकलत्रिक तथा आतप-इन 9 का अबंध काल इस प्रकार है–

इनका अबंध 185 सागरोपम तथा चार पल्योपम से कुछ अधिक है ।

कोई जीव छठे नरक में 22 सागरोपम आयु का नारक बना । वहाँ मरते समय सम्यक्त्व प्राप्त कर मनुष्य बनकर अणुव्रती बनकर 4 पल्योपम आयु का देव हुआ ।

वहाँ से च्युत होकर मनुष्य होकर दीक्षा लेकर नौवें ग्रैवेयक में 31 सागरोपम वाला देव बना । वहाँ अन्तर्मुहूर्त बाद मिथ्यादृष्टि हुआ । फिर अंत समय में सम्यग्दृष्टि होकर मनुष्य बनकर दीक्षा लेकर दो बार विजयादि में पैदा हुआ । फिर मनुष्य बनकर अन्तर्मुहूर्त के लिए मिश्र गुणस्थान पाकर पुनः समकित पाकर तीन बार अच्युत में पैदा हुआ । इस सब काल को जोड़ने पर-

मनुष्य भव तथा चार पल्योपम सहित 185 सागरोपम तक उत्कृष्ट अबंध काल हुआ ।

ऋषभ नाराच आदि 25 का अबंधकाल

ऋषभ नाराच आदि 5 संघयण, न्यग्रोध परिमंडल आदि 5 संस्थान, अशुभ विहायोगति, अनंतानुबंधी चतुष्क, मिथ्यात्व, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, थीणद्धि त्रिक, नीच गोत्र, नपुंसक तथा स्त्रीवेद इन 25 का अबंध काल मनुष्य भव सहित 132 सागरोपम है । उदा. कोई मनुष्य दीक्षा लेकर दो बार विजयादि में पैदा हुआ ।

फिर मनुष्य भव में आकर मिश्र गुणस्थान प्राप्त कर पुनः समकित प्राप्त कर तीन बार अच्युत में जन्म लिया ।

इस प्रकार 66 + 66 = 132 सागरोपम से कुछ अधिक अबंध काल हुआ ।

उत्तर प्रकृति का अबंध काल

प्रकृति का नाम	अबंधकाल
58 प्रकृतियाँ : 5 ज्ञानावरणीय, 6 दर्शनावरणीय, 2 वेदनीय, 4 संज्वलन कषाय, 6 हास्यादि, पुरुषवेद, पंचेन्द्रिय, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, पहला संघयण, 4 वर्णादि, शुभ विहायोगति, 6 प्रत्येक, 10 त्रसादि, अस्थिर, अशुभ, उच्च गोत्र, 5 अंतराय	अन्तर्मुहूर्त
25 प्रकृतियाँ : थीणद्धित्रिक, मिथ्यात्व, 4 अनंतानुबंधी कषाय, स्त्रीवेद,	मनुष्यभव सहित 132

नपुंसकवेद, 5 संघयण, 5 संस्थान अशुभ विहायोगति, दुर्भगत्रिक, नीच गोत्र	सागरोपम
4 अप्रत्याख्यानीय, 4 प्रत्याख्यानीय	देशोन पूर्व करोड वर्ष
6 मनुष्यत्रिक, औदारिकद्विक, पहला संघयण	3 पल्योपम
7 देवत्रिक, वैक्रिय द्विक, आहारक द्विक	33 सागरोपम
7 नरकत्रिक, तिर्यंचत्रिक, उद्योत	मनुष्य भव सहित 4 पल्योपम सहित 163, सागरोपम
9 एकेन्द्रिय, आतप, विकलेन्द्रियत्रिक, 4 स्थावर आदि	मनुष्य भव सहित 4 पल्योपम सहित 185 सागरोपम

विजयाइसु गेविज्जे तमाइ दहिसय दुतीस तेसट्ठं ।
पणसीइ सययबंधो पल्लतिगं सुरविउव्विदुगे ।।58।।

—: शब्दार्थ :—

विजयाइसु=विजयादिक में,
गेविज्जे=ग्रैवेयक में,
तमाइ=तम:प्रभा नरक में,
दहिसय=एकसौ सागरोपम,
दुतीस=बत्तीस,
तेसट्ठं=त्रेसठ सागरोपम,
पणसीइ=पचासी सागरोपम,
सययबंधो=निरन्तर बंध,
पल्लतिगं=तीन पल्य,
सुरविउव्विदुगे=सुरद्विक और वैक्रियद्विक में

भावार्थ :—विजयादिक में, ग्रैवेयक में तथा तम:प्रभा और ग्रैवेयक में गये जीव की उत्कृष्ट अबन्धस्थिति अनुक्रम से एक सौ बत्तीस एक सौ त्रेसठ और एक सौ पचासी सागरोपम मनुष्यभव सहित होती है । देवद्विक और वैक्रियद्विक का निरन्तर बंधकाल तीन पल्य है ।

विवेचन :–41 प्रकृतियों के अबंधकाल में 132 सागरोपम इस प्रकार होते हैं–

विजयादि 5 अनुत्तर में दो बार जन्म लेने पर-66 सागरोपम, फिर अन्तर्मुहूर्त के लिए तीसरे गुणस्थान में आकर पुनः समकित प्राप्त कर तीन बार अच्युत में जन्म लेने पर-66 सागरोपम हुए । 66 + 66 = 132 सागरोपम हुए ।

163 सागरोपम : नौवें ग्रैवेयक में 31 सागरोपम, फिर मनुष्यगति में जन्म लेकर दो बार विजयादि में जाकर पुनः मनुष्यभव में दीक्षा लेकर पुनः दो बार विजयादि में जाने पर 31 + 33 + 33 + 33 = 163 सागरोपम हुए ।

185 सागरोपम : छठे नरक में 22 सागरोपम

नौवे ग्रैवेयक में 31 सागरोपम

विजयादि में 2 बार 66 सागरोपम

फिर विजयादि में 2 बार 66 = 185 सागर से अधिक

इस प्रकार 41 प्रकृतियों का अबंध काल पंचेन्द्रिय जीव करता है ।

अध्रुवबंधी का निरंतर बंध काल

युगलिक का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम होता है । वे युगलिक मरकर देवगति में ही पैदा होने से तीन पल्योपम तक देवप्रायोग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं अतः देवद्विक व वैक्रिय द्विक का सतत बंध काल तीन पल्योपम है । वे प्रकृतियाँ परावर्तमान होने से जघन्य से बंधकाल एक समय है ।

समयादसंखकालं तिरिदुगनीएसु आउ अंतमुहू ।
उरलि असंखपरट्टा सायठिई पुव्वकोडूणा ।।59।।
जलहिसयं पणसीयं परघुस्सासे पणिंदितसचउगे ।
बत्तीसं सुहविहराइ पुमसुभगतिगुच्चचउरसे ।।60।।
असुखगइजाइआगिइ संघयणाहारनरयजोयदुगं ।
थिरसुभजसथावरदसनपुइत्थीदुजुयलमसायं ।।61।।

समयादंतमुहुर्त मणुदुगजिणवइरउर लवंगेसु ।
तित्तोसयरा परमा अंतमुहू लहू वि आउजिणे ।।62।।

—: शब्दार्थ :—

समयादसंखकालं=एक समय से लेकर असंख्य काल तक,
तिरिदुगनीएसु=तिर्यंचद्विक और नीचगोत्र का,
आउ=आयु कर्म का,
अंतमुहू=अन्तर्मुहूर्त तक,
उरलि=औदारिक शरीर का,
असंखपरट्टा=असंख्यात पुद्गल परावर्त,
सायठिई=सातावेदनीय का बंध,
पुव्वकोडूणा=पूर्व कोटि वर्ष से न्यून,
जलहिसयं=एक सौ सागरोपम,
पणसीयं=पचासी,
परघुस्सासे=पराघात और उच्छ्वास नामकर्म का,
पणिंदि=पंचेन्द्रिय जाति का,
तसचउगे=त्रस चतुष्क का,
बत्तीसं=बत्तीस,
सुहविहगइ=शुभ विहायोगति,
पुम=पुरुषवेद,
सुभगतिग=सुभगत्रिक,
उच्च=उच्चगोत्र,
चउरंसे=समचतुरस्रसंस्थान का,
असुखगइ=अशुभ विहायोगति,
जाइ=एकेन्द्रिय आदि चतुरिन्द्रिय तक जाति,
आगिइसंघयण=पहले के सिवाय पाँच संस्थान और पाँच संहनन,
आहारनरयजोयदुगं=आहारकद्विक, नरकद्विक, उद्योतद्विक ।
थिरसुभजस=स्थिर, शुभ, यशः-कीर्ति नाम,
थावरदस=स्थावर दशक,
नपुइत्थी=नपुंसक वेद, स्त्रीवेद,
दुजुयल=दो युगल,
असाय=असाता वेदनीय का,
समयादंतमुहूर्त=एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त
मणुदुग=मनुष्यद्विक
जिण=तीर्थंकर नामकर्म
वइर=वज्र ऋषभनाराच संहनन,
उरलुवंगेसु=औदारिक अंगोपांग का,
तित्तीसयरा=तैंतीस सागरोपम,
परमो=उत्कृष्ट बंध,
अंतमुह=अन्तर्मुहूर्त
लहू वि=जघन्य बंधी भी,
आउजिणे=आयुकर्म और तीर्थंकर नाम का

भावार्थ :–तिर्यंचद्विक और नीच गोत्र का एक समय से लेकर असंख्यात काल तक निरंतर बंध होता है । आयुकर्म का अन्तर्मुहूर्त, औदारिक शरीर का असंख्यात पुद्‌गल परावर्त और साता वेदनीय का कुछ कम पूर्व कोड़ी तक निरंतर बंध होता है ।

पराघात, उच्छ्‌वास, पंचेन्द्रिय जाति और त्रसचतुष्क का एक सौ पचासी सागरोपम निरंतर बंध होता है । शुभ विहायोगति, पुरुषवेद, सुभगत्रिक, उच्च गोत्र और समचतुरस्त्र संस्थान का उत्कृष्ट निरंतर बंध एक सौ बत्तीस सागरोपम होता है ।

अशुभ विहायोगति, एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक अशुभ जातिचतुष्क, पहले के सिवाय पाँच संस्थान, पाँच संहनन, आहारकद्विक, नरकद्विक, उद्योतद्विक, स्थिर, शुभ, यशकीर्ति नामकर्म, स्थावर दशक, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, दो युगल और असाता वेदनीय का, एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त निरंतर बंध होता है । मनुष्यद्विक, तीर्थंकर नामकर्म, वज्रऋषभनाराच संहनन और औदारिक अंगोपांग नामकर्म का तैंतीस सागरोपम उत्कृष्ट सतत बंध होता है । चार आयु और तीर्थंकर नामकर्म का जघन्य निरंतर बंध भी अन्तर्मुहूर्त होता है ।

विवेचन :–तिर्यंचद्विक व नीचगोत्र : इन तीन प्रकृतियों का जघन्य से 1 समय व उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक निरंतर बंध होता है ।

तेउकाय व वायुकाय तिर्यंच प्रायोग्य प्रकृति बाँधते हैं-उनकी कायस्थिति असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी है ।

आयुष्य का निरंतर बंध : आयुष्य का बंध एक भव में एक ही बार होता है । चारों प्रकार के आयुष्य का जघन्य बंध 1 समय व उत्कृष्ट बंध अन्तर्मुहूर्त है ।

औदारिक शरीर नाम : औदारिक शरीर नामकर्म का जघन्यबंध एक समय और उत्कृष्ट असंख्य पुद्‌गल परावर्त काल है । स्थावर की स्वकाय स्थिति असंख्य पुद्‌गल परावर्त काल है ।

शाता का निरंतर बंध शाता वेदनीय का जघन्य बंध एक समय और उत्कृष्ट से निरंतर बंध देशोन पूर्व करोड वर्ष है ।

8 वर्ष में दीक्षा लेकर 9 वें वर्ष में केवली बने महात्मा देशोन पूर्व करोड वर्ष तक निरंतर शाता का ही बंध करते हैं ।

परघातादि का निरंतर बंध

परघात और उच्छ्वास का जघन्य बंध 1 समय तथा निरंतर बंध 185 सागरोपम है ।

देव, मनुष्य व नारक पर्याप्ता प्रायोग्य प्रकृति का बंध करते हैं । पर्याप्ता प्रायोग्य प्रकृति के साथ परघात व उच्छ्वास का भी निरंतर बंध 185 सागरोपम तक करते हैं ।

पंचेन्द्रिय व त्रस चतुष्क : इन पाँचों का जघन्य बंध 1 समय व निरंतर बंध 185 सागरोपम है ।

शुभ विहायोगति आदि 7 का निरंतर बंध

गाथा नं. 57 के अनुसार अशुभ विहायोगति आदि 7 प्रकृतियों का अबंध काल 132 सागरोपम होने से शुभ विहायोगति आदि 7 का 132 सागरोपम तक निरंतर बंध होता है ।

अशुभ विहायोगति आदि 46 का निरंतर बंध काल :

वेदनीय की 1 - अशाता वेदनीय

मोहनीय की 6 (हास्य, रति, शोक, अरति, स्त्रीवेद-नपुंसक वेद)

नाम कर्म की 34 (नरक द्विक, जाति चतुष्क, आहारक द्विक, पाँच संघयण, पाँच संस्थान, अशुभ विहायोगति, उद्योत, आतप, त्रसादि 3 तथा स्थावर दशक)

ये 41 अध्रुवबंधी होने से जघन्य से इनका बंध 1 समय तथा उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त तक होता है अन्तर्मुहूर्त बाद उनकी विरोधी प्रकृति का बंध चालू हो जाने से उनका बंध रुक जाता है ।

मनुष्य द्विकादि का निरंतर बंध :

तीर्थंकर नामकर्म निकाचित कर जो अनुत्तर देव बनता है, वह साधिक 33 सागरोपम तक तीर्थंकर नामकर्म का बंध करता है, वह देव 33

सागरोपम तक मनुष्य प्रायोग्य प्रकृति बाँधता है, अतः मनुष्यद्विक, औदारिक अंगोपांग, वज्रऋषभ नाराच संघयण का निरंतर बंध साधिक 33 सागरोपम है। अध्रुवबंधी 73 में से चार आयुष्य व तीर्थंकर नामकर्म का जघन्य बंध अन्तर्मुहूर्त कहा है, शेष का जघन्य से 1 समय है।

अध्रुवबंधी 73 प्रकृति का सतत बंधकाल

प्रकृति का नाम	सतत बंधकाल
शाता	देशोन पूर्व करोड़ वर्ष
अशाता	अन्तर्मुहूर्त
हास्यादि 4, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद	अन्तर्मुहूर्त
पुरुष वेद	साधिक 132 सागरोपम
4 आयुष्य...नरक त्रिक	अन्तर्मुहूर्त
तिर्यंचद्विक नीच गोत्र	असंख्य काल चक्र
मनुष्य द्विक औदारिक अंगोपांग, पहला संघयण तीर्थंकर नाम	33 सागरोपम
देवद्विक, वैक्रिय द्विक	3 पल्योपम
आहारक द्विक	अन्तर्मुहूर्त
औदारिक शरीर	असंख्य पुद्गल परावर्त काल
पहला संस्थान, शुभ विहायोगति सुभगत्रिक	साधिक 132 सागरोपम
उच्चगोत्र, 4 जाति, 5 संघयण, 5 संस्थान, अशुभ विहायोगति, उद्योत, आतप, स्थिर, शुभ, यश, स्थावर दशक	अन्तर्मुहूर्त
पंचेन्द्रिय, पराघात, उच्छ्वास 4 त्रसादि	साधिक 185 सागरोपम

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

रस-बंध

तिव्वो असुहसुहाणं संकेसविसोहिओ विवज्जयउ ।
मंदरसो गिरिमहिरयजलरेहासरिसकसाएहिं ।।63।।
चउठाणाई असुहा सुहन्नहा विग्घदेसघाइआवरणा ।
पुमसंजलणिगदुतिचउठाणरसा सेसा दुगमाई ।।64।।

—: शब्दार्थ :—

तिव्वो=तीव्ररस,
असुहसुहाणं=अशुभ और शुभ प्रकृतियों का,
संकेसविसोहिओ=संक्लेश और विशुद्धि द्वारा,
विवज्जयउ=विपरीतता से,
मंदरसो=मंदरस,
गिरिमहिरयजलरेहा=पर्वत, पृथ्वी, रेती और जल की रेखा के,
सरिस=समान,
कसाएहिं=कषाय द्वारा,
चउठाणाई=चतुः स्थानादि,
असुहा=अशुभ प्रकृतियों में,
सुहन्नहा=शुभ प्रकृतियों में विपरीतता से,
विग्घदेसघाइआवरणा=अन्तराय और देशघाती आवरण प्रकृतियाँ
पुमसंजलण=पुरुषवेद और संज्वलन कषाय,
इगदुतिचउठाणरसा=एक, दो, तीन, चार स्थानिक रसयुक्त,
सेसा=बाकी की प्रकृतियाँ,
दुगमाई=दो आदि स्थानिक रसयुक्त ।

भावार्थ :—अशुभ और शुभ प्रकृतियों का तीव्र रस अनुक्रम से संक्लेश और विशुद्धि के द्वारा बँधता है । पर्वत, पृथ्वी, रेती और पानी में की गई रेखा के समान कषाय द्वारा अशुभ प्रकृतियों में चतुःस्थानिक आदि रस होता है । और शुभ प्रकृतियों में विपरीतता द्वारा चतुःस्थानिक आदि रस होता है । पाँच अन्तराय, देशघाती आवरण करनेवाली प्रकृतियाँ, पुरुषवेद और संज्वलन कषाय चतुष्क, ये प्रकृतियाँ एक स्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चारस्थानिक रसयुक्त और बाकी की प्रकृतियाँ द्विस्थानिक आदि तीन प्रकार के रसयुक्त बँधती हैं ।

विवेचन :–चौदह राजलोक में सर्वत्र कर्मवर्गणाएँ ठूंस ठूंस कर भरी हुई हैं, उन कर्म वर्गणाओं में फल देने की कुछ भी ताकत नहीं हैं, परंतु जब कषाय उदय सहित लेश्याजन्य परिणाम (अध्यवसाय) से आत्मा उन कर्म परमाणुओं को अपनी ओर खींचती है, तब उन कर्मों में आत्मा के शुभ-अशुभ अध्यवसायों से शुभ-अशुभ फल देने की ताकत पैदा होती है। कर्म में शुभाशुभ फल देने की शक्ति को `रस' कहते है ।

रसाणु :

केवली भगवंत भी अपने ज्ञान द्वारा जिनके दो विभाग न कर सकें रस के उस सूक्ष्म अंश को रसाणु-रसाविभाग कहते हैं ।

रसवर्गणा : समान रसाणुवाले पुद्गलों के समूह को वर्गणा कहते हैं ।

रस स्पर्द्धक : एक-एक रसाणु की वृद्धि से वर्गणाएँ स्पर्धा करती हों, उसे रस स्पर्द्धक कहते हैं ।

रस स्थानक : किसी एक जीव द्वारा एक समय में ग्रहण किए कर्म-पुद्गलों में जितने रसाणु होते हैं उन रसाणुओं के समूह को एक रस स्थानक कहते हैं ।

तीव्र और मंद रस

शुभ और अशुभ कर्मप्रकृतियों के तीव्र-मंदरस की चार-चार अवस्थाएँ हैं ।

1. तीव्र, 2. तीव्रतर, 3. तीव्रतम, 4. अत्यंत तीव्र ।

1. मंद, 2. मंदतर, 3. मंदतम और 4. अत्यंत मंद ।

इन चारों को क्रमशः एक स्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक भी कहा जाता है ।

तीव्र / मंद = एक स्थानिक

तीव्रतर / मंदतर = द्वि स्थानिक

तीव्रतम / मंदतम = त्रि स्थानिक

अत्यंत तीव्र / अत्यंत मंद = चतुः स्थानिक

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

निंबुच्छरसो सहजो दुतिचउभाग कड्ढिइक्कभागंतो ।
इगठाणाई असुहो असुहाणं सुहो सुहाणं तु ।।65।।

–: शब्दार्थ :–

निंबुच्छुरसो=नीम और ईख का रस,	**असुहो**=अशुभ रस,
सहजो=स्वाभाविक,	**असुहाणं**=अशुभ प्रकृतियों का,
दुतिचउभागकड्ढि=दो, तीन और चार भाग में उबाले जाने पर,	**सुहो**=शुभ रस,
इक्कभागंतो=एक भाग शेष रहे वह,	**सुहाणं**=शुभ प्रकृतियों का
इगठाणाई=एक स्थानिक आदि,	**तु**=और

भावार्थ :–नीम और ईख का स्वाभाविक रस तथा उसको दो, तीन, चार भाग में उबाले जाने पर एक भाग शेष रहे, उसे अशुभ प्रकृतियों का एकस्थानिक आदि अशुभ रस और शुभ प्रकृतियों का शुभ रस जानना चाहिए ।

विवेचन :–अशुभ प्रकृतियों का रस नीम जैसा है । नीम में जैसे कड़वापन होता है, उसी प्रकार अशुभ प्रकृतियों का फल दुःखदायी है ।

गन्ने में मीठापन है, उसी प्रकार शुभ प्रकृतियों का फल सुखदायी है ।

1 लीटर नीम का रस निकाला हो, फिर उसे उबालकर आधा कर दिया जाय तो उसका कड़वापन बढ़ जाएगा, उसे द्विस्थानिक रस कहते हैं ।

फिर उस रस को पुनः उबालकर आधा कर दिया जाय तो उसकी कड़वाहट और बढ़ जाएगी उसे त्रिस्थानिक रस कहते हैं ।

उस रस को पुनः उबालकर उसका आधा कर दिया जाय तो उसकी कड़वाहट और बढ़ जाएगी । उसे चतुःस्थानिक रस कहते हैं ।

इसी प्रकार गन्ने के 2 लीटर रस को उबालकर 1 लीटर कर दिया जाय तो उसकी मिठास दुगुनी हो जाएगी, उसे द्विस्थानिक रस कहते हैं । उस 1 लीटर रस को पुनः उबालकर ½ लीटर कर दिया जाय तो उसकी मिठास और बढ़ जाएगी उसे त्रिस्थानिक रस कहते हैं उस आधे लीटर रस को पुनः उबालकर ¼ लीटर कर दिया जाय तो इसकी मिठास और बढ़ जाएगी उसे चतुःस्थानिक रस कहते हैं ।

सर्वघाती प्रकृति का सर्वघाती रस :

सर्वघाती प्रकृति में चतुः स्थानिक, त्रि स्थानिक व द्विस्थानिक रस का बंध होता है । तथा स्वभाव से एक स्थानिक रस का बंध नहीं होता है ।

सर्वघाती प्रकृति में चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक व द्विस्थानिक स्पर्धक सर्वधाती ही होते है । सर्वघाती प्रकृति का रस सर्वघाती है ।

देशघाती प्रकृति का रस सर्वघाती व देशघाती :

देशघाती प्रकृति में चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक व एक स्थानिक रस का बंध होता है ।

देशघाती प्रकृति के चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक स्पर्धक सर्वघाती हैं । मंदद्विस्थानिक व एकस्थानिक स्पर्द्धक देशघाती होते हैं ।

तिव्वमिगथावरायव सुरमिच्छा विगलसुहुमनिरयतिगं ।
तिरिमणुयाउ तिरिनरा तिरिदुग छेवट्ठ सुरनिरया ।।66।।

—: शब्दार्थ :—

तिव्वं=तीव्र अनुभाग बंध,	**तिरिमणुयाउ**=तिर्यंचायु और
इगथावरायव=एकेन्द्रिय जाति,	मनुष्यायु का,
स्थावर और आतप नामकर्म का,	**तिरिनरा**=तिर्यंच और मनुष्य
सुरमिच्छा=मिथ्यादृष्टि देव,	**तिरिदुगछेवट्ठ**=तिर्यंचद्विक और
विगलसुहुमनिरयतिगं=विकलत्रिक,	सेवार्त संहनन का,
सूक्ष्मत्रिक और नरकत्रिक का,	**सुरनिरिया**=देव और नारक ।

भावार्थ :—एकेन्द्रिय जाति, स्थावर और आतप नामकर्म का उत्कृष्ट अनुभाग बंध मिथ्यादृष्टि देव करते हैं । विकलेन्द्रियत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, नरकत्रिक, तिर्यंचायु और मनुष्यायु का उत्कृष्ट अनुभाग बंध मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य करते हैं और तिर्यंचद्विक और सेवार्त संहनन का उत्कृष्ट अनुभाग बंध मिथ्यादृष्टि देव और नारक करते हैं ।

विवेचन :—अनुभाग बंध दो प्रकार का होता है...उत्कृष्ट और जघन्य ! सर्वप्रथम उत्कृष्ट अनुभाग बंध बताते हैं-

एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम और आतप इन तीन प्रकृतियों का

उत्कृष्ट अनुभाग बंध ईशान देवलोक के मिथ्यादृष्टि देवता करते हैं ।

विकलत्रिक (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय) सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्म, साधारण व अपर्याप्त, नरकत्रिक, नरकगति, नरकायु व नरकानुपूर्वी) तिर्यंचायु व मनुष्य आयु का उत्कृष्ट अनुभाग बंध मिथ्यादृष्टि तिर्यंच व मनुष्य ही करते हैं ।

तिर्यंचायु व मनुष्यायु को छोड़ शेष नौ प्रकृतियों का बंध देवता व नारक नहीं करते हैं । तिर्यंच व मनुष्य आयु का उत्कृष्ट अनुभाग बंध युगलिक भूमि में जन्म लेनेवाले ही करते हैं । देव व नारक इन दो प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध नहीं करते हैं, अतः उनका उत्कृष्ट अनुभाग बंध मिथ्यादृष्टि मनुष्य व तिर्यंच ही करते हैं ।

तिर्यंच द्विक व सेवार्त संघयण इन तीनों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध मिथ्यादृष्टि देव व नारक करते हैं ।

देवगति में सेवार्त संघयण का उत्कृष्ट अनुभाग बंध ईशान से ऊपर के सानत्कुमार आदि देव ही करते हैं क्योंकि ईशान तक के देवता अति संक्लिष्ट परिणाम होने पर एकेन्द्रिय प्रायोग्य प्रकृतियों का ही बंध करते हैं ।

विउव्विसुराहारदुगं सुखगइ वन्नचउतेयजिणसायं ।
समचउपरघातसदस पणिंदिसासुच्च खवगाउ ।।67।।
तमतमगा उज्जोयं सम्मसुरा मणुयउरलदुगवइरं ।
अपमत्तो अमराउं चउगइमिच्छा उ सेसाणं ।।68।।

–: शब्दार्थ :–

विउव्विसुराहारदुगं=वैक्रियद्विक, देवद्विक,
सुखगइ=शुभ विहायोगति,
वन्नचउतेय=वर्णचतुष्क और तैजसचतुष्क,
जिण=तीर्थंकर नामकर्म,
सायं=साता वेदनीय का,
समचउ=समचतुरस्त्रसंस्थान,
परघा=परघात,
तसदस=त्रसदशक,
पणिंदिसासुच्च=पंचेन्द्रिय जाति उच्छ्वास नामकर्म और उच्च गोत्र का,
खवगाउ=क्षपक श्रेणि वाले को,
तमतमगा=तमःतमप्रभा के नारक,
उज्जोयं=उद्योत नामकर्म का,
सम्मसुरा=सम्यग्दृष्टि देव,
मणुयउरलदुग=मनुष्यद्विक औदारिकद्विक

वइरं=वज्रऋषभनाराच संहनन का,	**चउगइमिच्छा**=चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव,
अपमत्तो=अप्रमत्तं संयत,	**उ**=और
अमराउं=देवायु का,	**सेसाणं**=शेष प्रकृतियों का ।

भावार्थ :–वैक्रियद्विक, देवद्विक, आहारकद्विक, शुभ विहायोगति, वर्णचतुष्क, तैजसचतुष्क, तीर्थंकर नामकर्म, साता वेदनीय, समचतुरस्र संस्थान, परघात, त्रसदशक, पंचेन्द्रिय जाति, उच्छ्वास और उच्च गोत्र का उत्कृष्ट अनुभाग बंध क्षपक श्रेणि चढ़ने वाले करते हैं ।

तमःतमप्रभा के नारक जीव उद्योत नामकर्म का उत्कृष्ट अनुभाग बाँधते हैं तथा सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और वज्रऋषभनाराच संहनन का उत्कृष्ट अनुभाग बाँधते हैं । शेष प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

विवेचन :–वैक्रियद्विक से लेकर उच्छ्वास-उच्च गोत्र तक बत्तीस प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध क्षपक श्रेणी में रहे मनुष्य ही कर सकते हैं ।

सातावेदनीय, उच्चगोत्र और यशनाम कर्म का उत्कृष्ट अनुभाग बंध दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थान के अंत में होता है ।

इन तीन को छोड़ शेष 29 प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग में देवगति प्रायोग्य प्रकृतियों के बंधविच्छेद के समय होता है ।

17 + 32 =49 प्रकृतियों के वर्णन के बाद शेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का वर्णन करते हैं ।

उद्योत नाम कर्म के उत्कृष्ट अनुभाग का बंध सम्यक्त्व प्राप्ति के पहले के समय में करता है । सातवीं नरक का नारक अवश्य ही तिर्यंचगति में जन्म लेता है, अतः तिर्यंच प्रायोग्य ही कर्म बाँधता है ।

मनुष्य द्विक, औदारिक द्विक और वज्रऋषभनाराच संघयण-इन पाँचों के उत्कृष्ट अनुभाग का बंध सम्यग्दृष्टि देवता करते हैं ।

देव आयु के उत्कृष्ट अनुभाग का बंध अप्रमत्त मुनि के होता है ।

42 पुण्य प्रकृति व 14 पाप प्रकृतियों को छोड़ शेष 68 प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग बंध के स्वामी चारों गतियों के संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव हैं ।

जघन्य रस-बंध

थीणतिगं अणमिच्छं मंदरसं संजमुम्मुहो मिच्छो ।
बियतियकसाय अविरय देस पमत्तो अरइसोए ।।69।।

—: शब्दार्थ :—

थीणतिगं=स्त्यानर्द्धित्रिक,	**बियतियकसाय**=दूसरी और तीसरी कषाय का,
अणमिच्छं=अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व मोहनीय का	**अविरय**=अविरत सम्यग्दृष्टि,
मंदरसं=जघन्य अनुभाग बंध,	**देस**=देशविरति,
संजमुम्मुहो=सम्यक्त्व चारित्र के अभिमुख,	**पमत्तो**=प्रमत्तविरत,
मिच्छो=मिथ्यादृष्टि,	**अरइसोए**=अरति और शोक मोहनीय का ।

भावार्थ :—स्त्यानर्द्धित्रिक, अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व मोहनीय का सम्यक्त्व सहित चारित्र प्राप्त करने के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जघन्य अनुभाग बंध करते हैं । देशविरति चारित्र के सम्मुख हुआ अविरत सम्यग्दृष्टि दूसरी कषाय का और सर्वविरति चारित्र के सम्मुख होनेवाला देशविरति तीसरी कषाय का और प्रमत्तसंयत अरति व शोक मोहनीय का जघन्य अनुभाग बंध करता है ।

विवेचन :—सर्वप्रथम अशुभ प्रकृतियों के जघन्य रसबंध का वर्णन करते हैं ।

सामान्य से अशुभ प्रकृति का अपने बंधविच्छेद के स्थान में जघन्य स्थितिबंध होता है, परंतु थीणद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चतुष्क का दूसरे गुणस्थान में बंधविच्छेद समय में जघन्य स्थितिबंध नहीं होता है । परंतु सम्यक्त्व के अभिमुख बना हुआ जीव पहले गुणस्थानक के अंतिम समय में इन आठ प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग का बंध करता है ।

अप्रत्याख्यानीय चतुष्क के जघन्य अनुभाग का बंध पाँचवें देशविरति गुणस्थान के अभिमुख बना हुआ चौथे गुणस्थानक के अंतिम समय में करता है ।

प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के जघन्य अनुभाग का बंध छठे गुणस्थानक के अभिमुख बना हुआ पाँचवें गुणस्थानक के अंतिम समय में करता है ।

अरति व शोक इन दो प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग का बंध सातवें गुणस्थान के अभिमुख बना हुआ छठे गुणस्थानक के अंतिम समय में करता है ।

अपमाइ हारगदुगं दुनिद्दअसुवन्नहासरइकुच्छा ।
भयमुवघायमपुव्वो अनियट्टी पुरिससंजलणे ।।70।।

—: शब्दार्थ :—

अपमाइ=अप्रमत्त मुनि,
हारगदुगं=आहारकद्विक,
दुनिद्द=दो निद्रा,
असुवन्न=अप्रशस्त वर्णचतुष्क,
हासरइकुच्छा=हास्य, रति और जुगुप्सा,
भय=भय,
उवघायं=उपघात नामकर्म का,
अपुव्वो=अपूर्वकरण गुणस्थान वाला,
अनियट्टी=अनिवृत्तिबादर गुणस्थान वाला,
पुरिस=पुरुष वेद,
संजलणे=संज्वलन कषाय का ।

भावार्थ :—आहारकद्विक का जघन्य अनुभाग बंध अप्रमत्त मुनि करते हैं । दो निद्रा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय और उपघात नामकर्म का अपूर्वकरण गुणस्थान वाले जघन्य अनुभाग बंध करते हैं और अनिवृत्तिबादर गुणस्थानवर्ती पुरुष वेद, संज्वलन कषाय का जघन्य अनुभागबंध करते हैं ।

विवेचन :—अहारकद्विक प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके जघन्य अनुभाग का बंध सातवें गुणस्थान में रहे अप्रमत्त मुनि छठे गुणस्थान में जाते समय करते हैं, उस समय संक्लिष्ट परिणाम होते हैं ।

निद्राद्विक (निद्रा-प्रचला) अशुभ वर्णचतुष्क (अशुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श) हास्य, रति, जुगुप्सा, भय और उपघात इन ग्यारह प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग का बंध अपूर्वकरण गुणस्थानवाले तथा पुरुषवेद व संज्वलन कषाय का जघन्य अनुभाग बंध अनिवृत्ति बादरसंपराय गुणस्थानवाले करते हैं । ये दोनों गुणस्थान क्षपक श्रेणी के लेने चाहिए ।

निद्रा आदि अशुभ प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बंध विशुद्ध परिणाम से होता है । अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण गुणस्थान वाले जीव विशेष शुद्ध होते हैं ! इन प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बंध अपनी-अपनी व्युच्छित्ति के समय होता है ।

विग्घावरणे सुहमो मणुतिरिया सुहुमविगलतिगआऊ ।
वेगुव्विछक्कममरा निरया उज्जोयउरलदुगं ।।71।।

–: शब्दार्थ :–

विग्घावरणे=पाँच अंतराय और नौ आवरण (ज्ञान-दर्शन के) का,	**आऊ**=चार आयु का,
सुहमो=सूक्ष्मसंपराय वाला,	**वेगुव्विछक्कं**=वैक्रियषट्क का,
मणुतिरिया=मनुष्य और तिर्यंच,	**अमरा**=देव,
सुहुमविगलतिग=सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक,	**निरय**=नारक,
	उज्जोय=उद्योत नामकर्म का,
	उरलदुगं=औदारिकद्विक का

भावार्थ :–पाँच अंतराय तथा पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरण का जघन्य अनुभाग बंध सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान वाला करता है । मनुष्य और तिर्यंच सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, चार आयु और वैक्रियषट्क का जघन्य अनुभाग बंध तथा उद्योत नामकर्म एवं औदारिकद्विक का जघन्य अनुभाग बंध देव तथा नारक करते हैं ।

विवेचन :–दानांतराय आदि पाँच अंतराय, मतिज्ञानावरण आदि पाँच आवरण और चक्षुदर्शनावरण आदि चार दर्शनावरण इन 14 प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बंध दसवें सूक्ष्म संपराय नाम के गुणस्थान में चरम समय में करता है ।

सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त)

विकलत्रिक (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय)

चार आयुष्य तथा वैक्रिय षट्क (वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, नरक गति, नरकानुपूर्वी) इन सोलह प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग बंध के स्वामी मनुष्य व तिर्यंच हैं ।

इन सोलह में से मनुष्य व तिर्यंचायु को छोड़ शेष 14 प्रकृतियाँ देव-

नारक बाँधते ही नहीं हैं । तथा देव व नारक जघन्य स्थितिवाले मनुष्य-तिर्यंच नहीं होते हैं, अतः जघन्य अनुभाग भी देव-नारक को नहीं है ।

उद्योत व औदारिक द्विक का जघन्य अनुभाग बंध मनुष्य व तिर्यंच करते हैं ।

औदारिक अंगोपांग का जघन्य अनुभाग बंध ईशान से ऊपर के देवता करते हैं, क्योंकि ईशान तक के देव उत्कृष्ट संक्लेश होने पर एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं-एकेन्द्रिय के अंगोपांग नहीं होते हैं, अतः उन्हें औदारिक अंगोपांग का जघन्य अनुभाग बंध नहीं होता है ।

तिरिदुगनिअं तमतमा जिणमविरय निरयविणिगथावरयं ।
आसुहुमायव सम्मो व सायथिरसुभजसा सिअरा ।।72।।

—: शब्दार्थ :—

तिरिदुग=तिर्यंचद्विक,	**आसुहुमा**=सौधर्म ईशान स्वर्ग तक के देव,
निअं=नीच गोत्र का,	**आयव**=आतप नामकर्म का,
तमतमा=तमःतमप्रभा के नारक,	**सम्मो व**=सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि,
जिणं=तीर्थंकर नामकर्म का,	**सायथिरसुभजसा**=सातावेदनीय, स्थिर नाम, शुभ नाम और यशः कीर्ति नामकर्म का,
अविरय=अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य,	**सिअरा**=इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियों सहित ।
निरयविण=नरक के सिवाय तीन गति वाले जीव,	
इगथावरयं=एकेन्द्रिय जाति और स्थावर नामकर्म का,	

भावार्थ :—तिर्यंचद्विक और नीचगोत्र का जघन्य अनुभाग बंध तमः तमप्रभा नामक सातवें नरक के नारक करते हैं । तीर्थंकर नामकर्म का जघन्य अनुभागबन्ध अविरत सम्यग्दृष्टि जीव करता है । नरकगति के सिवाय शेष तीन गतिवाले जीव एकेन्द्रिय जाति और स्थावर नामकर्म का जघन्य अनुभागबन्ध करते हैं । सौधर्म और ईशान स्वर्गतक के देव आतप नामकर्म का जघन्य अनुभागबंध करते हैं । सातावेदनीय, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति और इन चारों की प्रतिपक्षी प्रकृतियों का जघन्य अनुभागबंध सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

विवेचन :–सातवीं नरक में रहा हुआ नारक सम्यक्त्व प्राप्त करते समय अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में तिर्यंचद्विक और नीच गोत्र का जघन्य अनुभाग बंध करता है । ये तीनों अशुभ प्रकृतियाँ हैं, अतः इनका जघन्य अनुभाग बंध सम्यक्त्व के अभिमुख रहा शुद्ध जीव ही करता है ।

एक से छह नरक के जीव सम्यक्त्वप्राप्ति के पूर्व अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में मनुष्य प्रायोग्य प्रकृति व उच्चगोत्र ही बाँधते हैं ।

तिर्यंच व मनुष्य उस समय देव प्रायोग्य प्रकृति व उच्चगोत्र का ही बंध करते हैं ।

तीर्थंकरनाम का जघन्य रसबंध :

पहले नरक आयुष्य को बाँध लिया हो, ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थंकर नामकर्म को निकाचित कर नरक में जाते समय अपने आयुष्य के अंतिम अन्तर्मुहूर्त में मिथ्यात्व के अभिमुख बना हुआ तीर्थंकर नाम कर्म का जघन्य अनुभाग बंध करता है ।

यद्यपि तीर्थंकर नाम कर्म का बंध चौथे से आठवें गुणस्थान में होता है, लेकिन शुभ प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बंध संक्लेश से होता है, वह संक्लेश अविरत सम्यग्दृष्टि को होता है ।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि मरकर नरक में जा सकते हैं, किंतु उनके परिणाम विशुद्ध होने से तीर्थंकर प्रकृति के जघन्य अनुभाग का बंध वे नहीं करते हैं ।

एकेन्द्रिय जाति व स्थावर नाम :

एकेन्द्रिय जाति व स्थावर नाम कर्म का जघन्य अनुभाग बंध नरक गति को छोड़ शेष तीन गतियों के जीव करते हैं ।

आतप प्रकृति का जघन्य अनुभाग बंध भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और ईशान देवलोक के वैमानिक देव करते हैं । सानत्कुमार आदि ऊपर के देव जन्म से ही इस प्रकृति का बंध नहीं करते हैं ।

साता-असाता वेदनीय के जघन्य अनुभाग बंध के स्वामी परावर्तमान मध्यम परिणामवाले सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि जीव हैं ।

स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश-अपयश इन प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग बंध सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

तसवन्नतेयचउमणुखगइदुग पणिंदिसासपरघुच्चं ।
संघयणागिइनपुत्थीसुभगियरति मिच्छा चउगइया ।।73।।

—: शब्दार्थ :—

तसवन्नतेयचउ=त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, तैजस चतुष्क,	**संघयणागिइ**=छह संहनन और छह संस्थान,
मणुखगइदुग=मनुष्यद्विक, विहायोगतिद्विक,	**नपुत्थी**=नपुंसकवेद, स्त्रीवेद,
पणिंदि=पंचेन्द्रिय जाति,	**सुभगियरति**=सुभगत्रिक और इतर दुर्भगत्रिक का,
सास=उच्छ्वास नामकर्म	**मिच्छ**=मिथ्यादृष्टि,
परघुच्चं=परघात नाम और उच्च गोत्र का,	**चउगइया**=चारों गति वाले

भावार्थ :—त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, तैजसचतुष्क, मनुष्यद्विक, विहायोगतिद्विक, पंचेन्द्रिय जाति, उच्छ्वास, परघात, उच्चगोत्र, छह संहनन, छह संस्थान, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, सुभगत्रिक, दुर्भगत्रिक का चारों गति वाले मिथ्यादृष्टि जीव जघन्य अनुभाग बंध करते हैं ।

विवेचन :—उपर्युक्त गाथा में निर्दिष्ट 40 प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग बंध के स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव हैं । त्रस चतुष्क, वर्ण चतुष्क, तैजस चतुष्क, पंचेन्द्रिय जाति, उच्छ्वास और परघात ये पंद्रह शुभ प्रकृतियाँ हैं, अतः इनका जघन्य अनुभाग बंध उत्कृष्ट संक्लेश से होता है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य व तिर्यंच उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणामों से जब नरकगति प्रायोग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं, तब इन पंद्रह प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बंध होता है ।

नारक तथा ईशान के ऊपर के देवता जब पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रायोग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं, तब पंचेन्द्रिय जाति व त्रस को छोड़ तेरह प्रकृतियों का एकेन्द्रिय प्रायोग्य जघन्य अनुभाग बंध करते हैं ।

स्त्री व नपुंसक वेद अप्रशस्त है, उनका जघन्य अनुभाग बंध विशुद्ध परिणामवाले मिथ्यादृष्टि करते हैं । मनुष्यद्विक, छह संघयण, छह संस्थान, अशुभविहायोगति, सुभगत्रिक, दुर्भगत्रिक व उच्च गोत्र का जघन्य अनुभाग बंध मध्यम परिणामवाले मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

अशुभ प्रकृति के जघन्य बंध के स्वामी

अशुभ प्रकृति का नाम	जघन्य रसबंध के स्वामी
ज्ञानावरणीय 05, दर्शनावरणीय 04, अंतराय 05,	अतिविशुद्ध परिणामी 10 वें गुण-स्थानक के अंतिम समय में रहे क्षपक आत्मा
पुरुषवेद, संज्वलन-4	नौवें गुणस्थानक में उस-उस प्रकृति के बंधविच्छेद के स्थान में रहे क्षपक आत्मा
निद्राद्विक, अशुभवर्णादि-4, उपघात, हास्य-रति, भय-जुगुप्सा	आठवें गुणस्थान में उस-उस प्रकृति के बंधविच्छेद में रहे क्षपक आत्मा
अरति-शोक	अप्रमत्त के सन्मुख रहे प्रमत्तसंयमी
प्रत्याख्यानावरण-4	अप्रमत्त के सन्मुख रहे देशविरतिधर
अप्रत्याख्यानावरण-4,	अप्रमत्त के सन्मुख रहे अविरत समकिती
अनंता-4, मिथ्यात्व, थीणद्धित्रिक	अप्रमत्त के सन्मुख रहे मिथ्यादृष्टि
स्त्रीवेद, नपुंसकवेद	विशुद्ध परिणामी मिथ्यादृष्टि
नरकायु	विशुद्ध परिणामी तिर्यंच मनुष्य
तिर्यंचद्विक-नीचगोत्र	अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में रहा सातवीं नरक का मिथ्यादृष्टि नारक
एकेन्द्रिय-स्थावर	मध्यम परिणामी तीन गति के मिथ्यादृष्टि जीव
अशाता-अस्थिर अशुभ-अयश	मध्यम परिणामी एक से छह गुणस्थानवाले जीव
5 संघयण, 5 संस्थान अशुभविहायोगति, दुर्भगत्रिक	मध्यम परिणामी चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव
सूक्ष्मत्रिक, विकलेन्द्रियत्रिक नरकद्विक	मध्यम परिणामी तिर्यंच-मनुष्य

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-1)

शुभप्रकृति के जघन्य रसबंध स्वामी

शुभ प्रकृति का नाम	जघन्य रसबंध के स्वामी
देवद्विक	मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि तिर्यंच मनुष्य
वैक्रियद्विक	अति संक्लिष्ट परिणामी तिर्यंच-मनुष्य
आहारकद्विक	प्रमत्त के सन्मुख बने अप्रमत्त मुनि
औदारिकद्विक, उद्योत	अति संक्लिष्ट परिणामी देवता और नारक
जिन नाम	मिथ्यात्व के सन्मुख बने नरक आयुष्य को बाँधे हुए अविरत सम्यग्दृष्टि
आतप	अति संक्लिष्ट परिणामी दुसरे (ईशान) देवलोक तक के देव
त्रसादि-4, शुभवर्णाद्वि-4, तैजसादि-4, परघात अगुरु लघु. निर्माण उच्छ्वास, पंचे०, जाति	अति संक्लिष्ट परिणामी चारों गतियों के मिथ्यात्वी जीव
3 आयुष्य	तद्योग्य संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य
शाता, स्थिरादि-3,	परावर्तमान मध्यम परिणामी 1 से 6, गुणस्थानक के जीव
शुभ विहायोगति, मनुष्यद्विक, प्रथम संघयण, प्रथम संस्थान, सुभगत्रिक, उच्चगोत्र	परावर्तमान मध्यम परिणामी चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि जीव

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (सार्थ)

रसबंध में सादि आदि भंग

चउतेयवन्नवेयणिय नामणुक्कोस सेसधुवबंधी ।
घाईणं अजहन्नो गोए दुविहो इमो चउहा ।।74।।
सेसंमि दुहा.....

–: शब्दार्थ :–

चउतेयवन्न=तैजसचतुष्क और वर्णचतुष्क,
वेयणिय=वेदनीय कर्म,
नाम=नाम कर्म का,
अणुक्कोस=अनुत्कृष्ट अनुभाग बंध,
सेसधुवबंधी=बाकी की ध्रुवबंधिनी प्रकृतियों का,
घाईणं=घाति प्रकृतियों का,
अजहन्नो=अजघन्य अनुभाग बंध,
गोए=गोत्र कर्म का,
दुविहो=दो प्रकार के अनुभाग बंध, (अनुत्कृष्ट और अजघन्य बन्ध)
इमो=ये
चउहा=चार प्रकार के (सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव)
सेसंमि=बाकी के तीन प्रकार के अनुभाग बंध के,
दुहा=दो प्रकार ।

भावार्थ :–तैजस चतुष्क, वर्ण चतुष्क, वेदनीय कर्म और नामकर्म का अनुत्कृष्ट अनुभाग बंध तथा बाकी की ध्रुवबंधिनी और घाती प्रकृतियों का अजघन्य अनुभाग बंध और गोत्रकर्म के दोनों बन्ध (अनुत्कृष्ट और अजघन्य चारों प्रकार के हैं ।)

उक्त प्रकृतियों के शेष अनुभाग बन्ध और बाकी की अन्य शेष प्रकृतियों के सभी बंध दो ही प्रकार के हैं ।

विवेचन :–रसबंध के चार प्रकार हैं–(1) जघन्य रसबंध (2) अजघन्य रसबंध (3) उत्कृष्ट रसबंध (4) अनुत्कृष्ट रसबंध ।

किसी भी कर्म के सबसे कम रसबंध को जघन्य रसबंध कहते हैं । जघन्य रसबंध से एक रसाणु अधिक दो रसाणु अधिक इस प्रकार उत्कृष्ट

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

रसबंध के पूर्व तक के रसबंध अजघन्य रसबंध कहलाते हैं ।

किसी भी कर्म के सबसे अधिक रसबंध को उत्कृष्ट रसबंध कहते हैं और उसमें एक-एक रसाणु कम करते हुए अंतिम जघन्य रसबंध के पूर्व तक के सभी रसबंध अनुत्कृष्ट रसबंध कहलाते हैं ।

जघन्य और उत्कृष्ट रसबंध का एक ही प्रकार है । अजघन्य और अनुत्कृष्ट रसबंध के अनंत भेद है ।

शुभ ध्रुवबंधी में जघन्यादि भंग :–

मूलकर्म के जघन्यादिरसबंध में भंग

मूलकर्मों के जघन्यादि रसबंध	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	कुल
8 मूलकर्मों के जघन्यरसबंध	8			8	16
8 मूल कर्मो के उत्कृष्टरसबंध	8			8	16
4 घातीकर्मों के अजघन्यरसबंध	4	4	4	4	16
गोत्र कर्मों का अजघन्यरसबंध	1	1	1	1	4
3 अघाती कर्मों का अजघन्यरसबंध	3			3	6
4 घाती कर्मों का अनुष्कृष्टरसबंध	4			4	18
3 अघाती कर्म के अनु-रसबंध	3	3	3	3	12
आयुष्य का अनु-रसबंध	1			1	2
कुल	32	8	8	32	80

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

उत्तर प्रकृति के जघन्यादि रसबंध में भंग

उत्तर प्रकृति के जघन्यादि रसबंध	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	कुल
शुभ ध्रुवबंधी-8 का जघन्यरसबंध	8			8	16
शुभ ध्रुवबंधी-8 का अजघन्यरसबंध	8			8	16
शुभ ध्रुवबंधी-8 का उ.रसबंध	8			8	16
शुभ ध्रुवबंधी-8 का अनु.रसबंध	8	8	8	8	32
अशुभ ध्रुवबंधी-43 का ज.रसबंध	43			43	86
अशुभ ध्रुवबंधी-43 का अजघ.रसबंध	43	43	43	43	172
अशुभ ध्रुवबंधी-43 का उ.रसबंध	43			43	86
अशुभ ध्रुवबंधी-43 का अनु.रसबंध	43			43	86
अशुभ ध्रुवबंधी-43 का उ.रसबंध	43			43	
अध्रुवबंधी-73 का ज.रसबंध	73			73	146
अध्रुवबंधी-73 का अजघन्यरसबंध	73			73	146
अध्रुवबंधी-73 का उ.सबंध	73			73	146
अध्रुवबंधी-73 का अनु.रसबंध	73			73	146
कुल	496	+51	+51	+496	=1094

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (कर्म-5)

प्रदेश-बंध

इगदुगणुगाइ जा अभवणंत गुणियाणू ।
खंधा उरलोचियवग्गणा उ तह अगहणतरिया ।।75।।

–: शब्दार्थ :–

इगदुगणुगाइ=एकाणुक, द्व्यणुक आदि	**उरलोचियवग्गणा**=औदारिक के योग्य वर्गणा,
जा=यावत् तक,	**तह**=तथा
अभवणंत गुणियाणू=अभव्य से अनंत गुणे परमाणु वाला,	**अगहणंतरिया**=ग्रहणयोग्य वर्गणा के बीच अग्रहण योग्य वर्गणा ।
खंधा=स्कन्ध,	

भावार्थ :–एकाणुक, द्वयणुक आदि से लेकर अभव्य जीवों से भी अनन्त गुणे परमाणु वाले स्कंधों तक ही औदारिक की ग्रहण योग्य वर्गणा होती है । तथा एक-एक परमाणु की वृद्धि से ग्रहणयोग्य वर्गणा से अन्तरित अग्रहणयोग्य वर्गणा होती है ।

विवेचन :–चौदह राजलोक रूप यह संपूर्ण लोक परमाणु और पुद्गलस्कंधों से भरा हुआ है । उन पुद्गल स्कंधों की कुल आठ वर्गणाएँ हैं- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, श्वासोच्छ्वास, भाषा और कार्मण !

परमाणु अर्थात् केवली की दृष्टि में भी पुनः जिसके दो भाग नहीं हो सकते हैं ।

स्कंध अर्थात् परमाणुओं का समूह ।

वर्गणा-समान संख्यावाले स्कंधों के समूह को वर्गणा कहते हैं ।

प्रस्तुत गाथा में औदारिक वर्गणा की बात करते हैं । आगे की गाथा में शेष सभी वर्गणाओं का स्वरूप बताया है । औदारिक वर्गणा दो प्रकार की है- ग्रहण योग्य और अग्रहण योग्य !

प्रदेशबंध को समझने के लिए कर्मवर्गणा को समझना जरूरी है और

कर्मवर्गणा समझने के लिए औदारिक आदि वर्गणाओं को समझना जरूरी है ।

(1) अग्रहण योग्य वर्गणा : जो वर्गणा अल्प परमाणु वाली होने से जीव द्वारा ग्रहण नहीं की जाती है, उसे अग्रहण योग्य वर्गणा कहते हैं ।

लोक में 1-1 परमाणु भी अनंत हैं । उस अनंत परमाणुओं के समूह को प्रथम वर्गणा कहते हैं । लोक में दो प्रदेशी स्कंध समूह की दूसरी वर्गणा है । इसी प्रकार संख्यात प्रदेश के समूह की संख्यातवीं वर्गणा है, असंख्यात प्रदेश के समूह की दूसरी और अनंत प्रदेशी स्कंध के समूह की अनंतवीं वर्गणा है ।

पहली वर्गणा से लेकर अनंतवीं वर्गणा के पुद्गल स्कंधों से भी जीव औदारिक शरीर नहीं बना सकता है, अतः उसे औदारिक अग्रहण योग्य वर्गणा कहते हैं ।

(2) ग्रहण योग्य औदारिक वर्गणा : अभव्य जीवों की राशि से अनंतगुणे और सिद्ध जीवों की राशि के अनंतवें भाग प्रमाण परमाणुओं से बने स्कंध यानी इतने परमाणु वाले स्कन्ध जीव के द्वारा ग्रहण करने योग्य होते है और जीव उन्हें ग्रहण करके औदारिक शरीर रूप में परिणमाता है, वह सबसे पहली ग्रहण योग्य औदारिक वर्गणा होती है । औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य वर्गणाओं में यह वर्गणा सबसे जघन्य होती है, उसमें 1-1 परमाणु की वृद्धि से अनंत वर्गणाएँ औदारिक शरीर के ग्रहण योग्य होती हैं ।

(3) अग्रहण योग्य औदारिक वर्गणा : औदारिक शरीर की उत्कृष्ट वर्गणा के ऊपर एक-एक परमाणु बढ़ते स्कंधों की अनंत अग्रहण योग्य वर्गणा होती है ।

औदारिक शरीर की ग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा से उसी की उत्कृष्ट वर्गणा अनंतवें भाग अधिक है, वैसे ही अग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा से उसकी उत्कृष्ट वर्गणा अनंत गुणी है । इस गुणाकार का प्रमाण अभव्य राशि से अनंत गुणा और सिद्ध राशि का अनंतवाँ भाग है ।

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

एमेव विउव्वाहारतेयभासाणुपाणमणकम्मे ।
सुहुमा कमावगाहो ऊणूणंगुलअसंखंसो ।।76।।

—: शब्दार्थ :—

एमेव=पूर्वोक्त के समान,	**कम**=अनुक्रम से
विउव्वाहारतेयभासाणुपाणमणकम्मे= वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन और कार्मण वर्गणा,	**अवगाहो**=अवगाहना
सुहुमा=सूक्ष्म	**ऊणूण**=न्यून-न्यून, **अंगुलअसंखंसो**=अंगुल के असंख्यातवें भाग ।

भावार्थ :—पूर्वोक्त के समान ही वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन और कार्मण वर्गणायें होती हैं । ये औदारिकादि वर्गणायें क्रमशः सूक्ष्म समझना चाहिए और इनकी अवगाहना उत्तरोत्तर न्यून-न्यून, अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है ।

विवेचन :— (4) औदारिक की अग्राह्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कंध में रहे परमाणु में एक परमाणु के बढ़ने पर वह वैक्रिय शरीर के लिए ग्रहण योग्य चौथी वर्गणा होती है ।

वैक्रिय की ग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा के स्कंध में जितने परमाणु होते हैं, उसके अनंतवें भाग परमाणु बढने पर उस स्कंध के समूह की उत्कृष्ट वर्गणा होती है ।

(5) वैक्रिय अग्रहणयोग्य वर्गणा : वैक्रिय की ग्रहण योग्य वर्गणा में एक परमाणु बढ़ने पर वैक्रिय अग्रहण योग्य वर्गणा होती है । अग्रहण योग्य वर्गणा सेन वैक्रिय शरीर बन सकता है और न ही आहारक शरीर !

(6) आहारक ग्रहण योग्य वर्गणा : वैक्रिय की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में 1-1 परमाणु बढ़ने पर वह आहारक शरीर के ग्रहण योग्य वर्गणा बनती है । आहारक की ग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा में अनंत परमाणु बढ़ने से जघन्य से उत्कृष्ट में अनंत वर्गणाएँ होती हैं ।

(7) आहारक अग्रहण योग्य वर्गणा : आहारक की ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में 1-1 परमाणु के बढ़ने पर वह आहारक के लिए अग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

(8) तैजस ग्रहण योग्य वर्गणा : आहारक की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में 1-1 परमाणु के बढ़ने पर वह तैज से शरीर के लिए ग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

(9) तैजस अग्रहण योग्य वर्गणा : तैजस की ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में 1 परमाणु बढ़ जाने पर वह तैजस की अग्रहण योग्य वर्गणा बन जाती है ।

(10) भाषा ग्रहण योग्य वर्गणा : तैजस की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कंध में 1 परमाणु बढ़ जाने पर भाषा के लिए ग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

(11) भाषा अग्रहण योग्य वर्गणा : भाषा ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के एक स्कंध में एक परमाणु बढ़ जाने पर भाषा के लिए अग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

(12) श्वासोच्छ्वास ग्रहण योग्य वर्गणा : भाषा के ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में एक परमाणु के बढ़ जाने पर श्वासोच्छ्वास के लिए ग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

(13) श्वासोच्छ्वास अग्रहण योग्य वर्गणा : श्वासोच्छ्वास के ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कंध में 1 परमाणु बढ़ जाने पर वह श्वासोच्छ्वास के लिए अग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

(14) मनोग्रहण योग्य वर्गणा : श्वासोच्छ्वास के अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा में 1 परमाणु बढ़ जाने पर मनोग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

(15) मनो अग्रहण योग्य वर्गणा : मनोग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कंध में 1 परमाणु बढ़ जाने पर मनो अग्रहण योग्य वर्गणा हो जाती है ।

इक्किक्कहिया सिद्धाणंतसा अंतरेसु अग्गहणा ।
सव्वत्थ जहन्नुचिया नियणंतंसाहिया जिट्ठा ।।77।।

–: शब्दार्थ :–

इक्किक्कहिया=एक एक परमाणु द्वारा अधिक,	**सव्वत्थ**=सर्व वर्गणाओ का,
सिद्धाणंतंसा=सिद्धों के अनंतवें भाग,	**जहन्नुचिया**=जघन्य ग्रहण वर्गणा से,
अंतरेसु=अन्तराल में,	**नियणंसाहिया**=अपने अनन्तवें भाग अधिक,
अग्गहणा=अग्रहणयोग्य वर्गणा,	**जिट्ठा**=उत्कृष्ट वर्गणा ।

भावार्थ :–औदारिक आदि वर्गणाओं के मध्य में एक-एक परमाणु द्वारा अधिक सिद्धों के अनंतवें भाग परिमाण वाली अग्रहण योग्य वर्गणा होती है । औदारिक आदि सभी वर्गणाओं का उत्कृष्ट अपने अपने योग्य जघन्य से अनंतवें भाग अधिक होता है ।

विवेचन :–अग्रहण योग्य जघन्य वर्गणा के एक स्कंध में जितने परमाणु होते हैं, उनको सिद्धराशि के अनंतवें भाग से गुणा करने पर जो परमाणु आते हैं, उतने परमाणुओं की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है । अतः प्रत्येक अग्रहण योग्य वर्गणा की संख्या सिद्धों की संख्या की अनंतवें भाग बतलाई है ।

जघन्य अग्रहण योग्य वर्गणा के एक स्कंध में जितने परमाणु होते हैं वे सिद्धराशि के अनंतवं भाग से गुणा करने पर आते हैं, अतः जघन्य से उत्कृष्ट वर्गणा तक के उतने ही विकल्प अर्थात् अग्रहण योग्य वर्गणा के अनंत भेद होते हैं ।

अग्रहण योग्य वर्गणा के बाद ग्रहण योग्य वर्गणा होती है, उसके बाद पुनः आगे की अग्रहण योग्य वर्गणा होती है ।

अंतिमचउफासदुगंध-पंचवन्नरसकम्मखंधदलं ।
सव्वजियणंतगुणरसमणुजुत्तमणंतयपएसं ।।78।।
एगपएसोगाढं नियसव्वपएसउ गहेइ जिऊ ।

–: शब्दार्थ :–

अंतिमचउफास=अन्त में चार स्पर्श,
दुगंध=दो गंध,
पंचवन्नरस=पाँच वर्ण और पाँच रस वाले,
कम्मखंधदलं=कर्मस्कन्ध दलिकों को,
सव्वजियणंतगुणरसं=सर्व जीवों से भी अनन्त गुणे रस वाले,
अणुजुत्तं=अणुओं से युक्त,
अणंतयपएसं=अनन्त प्रदेश वाले,
एगपएसोगाढं=एक क्षेत्र में अवगाढ़ रूप से विद्यमान,
नियसव्वपएसउ=अपने समस्त प्रदेशों द्वारा,
गहेइ=ग्रहण करता है,
जिऊ=जीव ।

भावार्थ :–अन्त के चार स्पर्श, दो गंध, पाँच वर्ण और पाँच रस वाले सब जीवों से भी अनन्त गुणे रस वाले अणुओं से युक्त अनन्त प्रदेश वाले और एक क्षेत्र में अवगाढ़ रूप से विद्यमान कर्मस्कन्धों को जीव अपने सर्व-प्रदेशों द्वारा ग्रहण करता है ।

विवेचन :–जीव कर्मस्कंधों को ग्रहण करता है, वे सब पुद्‌गल स्वरूप हैं । हर पुद्‌गल में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होता ही है ।

एक परमाणु में पाँच में से कोई एक रस, पाँच रूप में से एक रूप, दो गंध में से एक गंध तथा आठ स्पर्शों में से दो अविरुद्ध स्पर्श होते हैं ।

एक परमाणु में एक रूप आदि होता है, परंतु कर्मस्कंध में अनंत परमाणु होने से उनमें पाँचों वर्ण आदि हो सकते हैं ।

इन कर्म स्कंधों में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और अंतिम चार स्पर्श होते है ।

औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस द्रव्य गुरुलघु और कार्मण, भाषा और मनोद्रव्य अगुरुलघु हैं ।

औदारिक से तैजस द्रव्य तक गुरुलघु होने से उनमें आठ स्पर्श होते हैं तथा भाषा, कार्मण व मनोद्रव्य अगुरुलघु होने से उनमें चार स्पर्श होते हैं ।

◆ सभी कर्मस्कंध समस्त जीवराशि से अनंतगुणे रस के धारक होते है ।

कर्मों में शुभाशुभ फल देने की शक्ति रस के कारण आती है । उस शक्ति के छोटे अंश को रसाणु कहते हैं । ये रसाणु भी सबसे जघन्य रसवाले पुद्‌गल द्रव्य में सर्व जीवराशि से अनंत गुणे होते हैं ।

◆ प्रत्येक कर्मस्कंध अनंतानंत प्रदेशवाला है यानी अनंत परमाणुवाला है ।

◆ कर्मवर्गणाएँ लोकव्यापी हैं, परंतु जीव अपने अत्यंत निकट रहे प्रदेश में व्याप्त कर्मवर्गणाओं को अपने समस्त आत्मप्रदेशों से ग्रहण करता है ।

थेवो आउ तदसो नामे गोए समो अहिउ ।।79।।
विग्घावरणे मोहे सव्वोवरि वेयणीय जेणप्पे ।
तस्स फुडत्तं न हवइ ठिईविसेसेण सेसाणं ।।80।।

–: शब्दार्थ :–

थेवो=सबसे अल्प,	**सव्वोवरि**=सबसे अधिक,
आउ=आयुकर्म का,	**वेयणीय**=वेदनीय कर्म का,
तदंसो=उसका अंश,	**जेण**=जिस कारण से,
नामे=नामकर्म का,	**अप्पे**=अल्पदलिक होने पर,
गोए=गोत्रकर्म का,	**तस्स**=उसका (वेदनीय का),
समो=समान,	**फुडत्तं**=स्पष्ट रीति से अनुभव,
अहिउ=विशेषाधिक,	**न हवइ**=नहीं होता है,
विग्घावरणे=अन्तराय और आवरणद्विक का,	**ठिईविसेसेण**=स्थिति की अपेक्षा से,
मोहे=मोह का,	**सेसाणं**=शेष कर्मों का ।

भावार्थ :–आयुकर्म का हिस्सा सबसे थोड़ा है । नाम और गोत्र कर्म का भाग आपस में समान है किन्तु आयुकर्म के भाग से अधिक है । अन्तराय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण का हिस्सा आपस में समान है । किन्तु नाम और गोत्र के हिस्से से अधिक है । मोहनीय का हिस्सा उससे अधिक है और सबसे अधिक वेदनीय कर्म का भाग है । क्योंकि थोड़े द्रव्य के होने पर वेदनीय कर्म का अनुभव स्पष्ट रीति से नहीं हो सकता है । वेदनीय के अलावा शेष सातों कर्मों को अपनी अपनी स्थिति के अनुसार भाग मिलता है ।

विवेचन :–कर्मों का विभाजन : आत्मा अपने समस्त आत्मप्रदेशों से जिन कर्मपरमाणुओं को ग्रहण करती है, उनका अलग अलग कर्मों में विभाजन होता है । तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में रही आत्मा आयुष्यकर्म का बंध नहीं करती है । अतः आयुष्य कर्म का बंध करते समय आत्मा कर्म-परमाणुओं को आठ भागों में विभाजित करती है और आयुष्य नहीं बाँधती हो तब उन कर्मों को सात भागों में विभाजित करती है ।

10 वें गुणस्थान में आत्मा मोहनीय और आयुष्य कर्म का बंध नहीं

करती है, अतः उस समय आत्मा अपने कर्मों को छह भागों में बाँटती है ।

11 वें गुणस्थान में आत्मा अपने कर्मस्कंधों को सिर्फ वेदनीय कर्म में परिणत करती है ।

कर्मप्रदेशों का विभाजन :

आत्मा जिन कर्मों को ग्रहण करती है, उनमें सबसे अधिक कार्मण स्कंध वेदनीय रूप में परिणत होते हैं । शेष जिस कर्म की स्थिति कम होती है उसमें कम भाग रहता है और ज्यादा स्थिति हो, उसमें ज्यादा भाग रहता है ।

सबसे कम कर्मदलिक आयुष्य कर्म में परिणत होते हैं, क्योंकि आयुष्य की स्थिति 33 सागरोपम है । उससे अधिक कर्मदलिक नाम व गोत्र में परिणत होते हैं, क्योंकि उन दोनों की कर्मस्थिति 20 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है, दोनों की स्थिति समान होने से दोनों को समान भाग मिलता है ।

उससे अधिक कर्मदलिक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अंतराय रूप में परिणत होते हैं, क्योंकि उनकी स्थिति 30 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

उससे अधिक कर्मदलिक मोहनीय के रूप में परिणत होते हैं, क्योंकि उसकी स्थिति 70 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है ।

उससे अधिक कर्मदलिक वेदनीय के रूप में परिणत होते हैं । अन्य कर्मों के दलिक कम हों तो भी वे अपना फल दे सकते हैं, जबकि वेदनीय कर्म के दलिक ज्यादा हों तो ही अपना फल बता पाते हैं ।

नियजाइलद्धदलियाणंतंसो होइ सव्वघाईणं ।
बज्झंतीण विभज्जइ सेस सेसाण पइसमयं ।।81।।

—: शब्दार्थ :—

नियजाइलद्धदलिय=अपनी मूल प्रकृति रूप जाति द्वारा प्राप्त किये गये कर्मदलिकों का,	**बज्झंतीण**=बँधने वाला,
अणंतंसो=अनन्तवाँ भाग,	**विभज्जइ**=विभाजित होता है,
होइ=होता है,	**सेसे**=शेष भाग,
सव्वघाईणं=सर्वघाती प्रकृतियों का,	**सेसाण**=बाकी की प्रकृतियों में,
	पइसमयं=प्रत्येक समय में

भावार्थ :–अपनी-अपनी मूल प्रकृति द्वारा प्राप्त किये गये कर्मदलिकों का अनन्तवाँ भाग सर्वघाति प्रकृतियों को प्राप्त होता है और शेष बचा हुआ हिस्सा प्राति समय बँधने वाली प्रकृतियों में विभाजित हो जाता है ।

विवेचन : ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय इन चार घाति कर्मों की कुछ उत्तरप्रकृतियाँ सर्वघाती हैं तो कुछ देशघाती ।

कर्म के बंध समय घातिकर्मों को जो भाग प्राप्त होता है, उसका अनंतवां भाग सर्वघाती प्रकृति को और शेष देशघाती में विभक्त होता है ।

(1) ज्ञानावरण में केवलज्ञानावरण सर्वघाती है और शेष चार देशघाती हैं अतः जो कर्म ज्ञानावरण में परिणत होता है उसका अनंतवाँ भाग केवलज्ञानावरण को शेष चार मतिज्ञानावरण आदि में विभक्त होता है ।

(2) दर्शनावरण की नौ प्रकृतियों में केवल दर्शनावरण व पाँच निद्राएँ सर्वघाती हैं और तीन देशघाती हैं, अतः दर्शनावरण का अनंतवाँ भाग छह प्रकृतियों में व शेष तीन प्रकृतियों में विभक्त होता है ।

(3) मोहनीय कर्म में मिथ्यात्व मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय में पहले बारह कषाय सर्वघाती हैं तथा संज्वलन चार कषाय तथा नौ नोकषाय देशघाती है ।

(4) मोहनीय कर्म में जो सर्वघाती दलिकों को प्राप्त होता है, उसके दो विभाग होते हैं, एक भाग दर्शनमोहनीय को प्राप्त होता है, वह मिथ्यात्व में परिणत होता है ।

दूसरा भाग चारित्र मोहनीय को प्राप्त होता है, जो बारह कषायों में परिणत होता है ।

चारित्र मोहनीय की देशघाती में जो भाग आता है-उसके दो भाग होते हैं- (1) कषाय मोहनीय (2) नोकषाय मोहनीय ।

कषाय मोहनीय का भाग चार संज्वलन कषायों में विभक्त होता है ।

नौ नोकषाय के 5 भाग होते हैं, क्योंकि एक समय में जीव तीन वेद में से एक वेद और दो युगल में से एक युगल ही बाँधता है, अतः एक जीव एक समय में 1 वेद, 1 युगल तथा भय-जुगुप्सा इन पाँच का बंध करता है ।

अंतराय कर्म की 5 प्रकृतियाँ देशघाती हैं, अतः उसके भाग में जो आता है, वह 5 में विभक्त होता है ।

(5) चार आयुष्य में से एक ही आयुष्य का बंध होता है, अतः आयुष्य के दलिक बध्यमान आयुष्य के भाग में आते हैं ।

(6) वेदनीय कर्म में एक समय में एक ही प्रकृति का बंध होता है, साता या असाता । अतः जो भी भाग आता है, वह एक को ही मिलता है ।

(7) नाम कर्म में जो भाग आता है, वह उत्तर प्रकृतियों में विभक्त होता है । वह गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, बंधन, संघात, संहनन, संस्थान, आनुपूर्वी, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, परघात, उद्योत, उपघात, उच्छ्वास, निर्माण, तीर्थंकर, आतप, विहायोगति और त्रस दशक अथवा स्थावर दशक में से जितनी प्रकृतियों का एक समय में बंध होता है, उतने भागों में वह प्राप्त द्रव्य बँट जाता है ।

उक्त प्रकृतियों में विशेष यह है कि वर्णचतुष्क में जितना भाग आता हो, वह अवांतर भेदों में बँट जाता है । जैसे वर्ण नाम का भाग पाँच वर्णों में विभक्त हो जाता है । इसी प्रकार गंध आदि के विषय में समझ लेना चाहिए ।

कुछ प्रकृतियाँ परस्पर विरोधिनी हैं, अतः एक का बंध होने पर दूसरे का बंध नहीं होता है । उदा. गति का बंध होने पर एक गति का बंध होगा, दूसरी का नहीं ।

गोत्र कर्म को जो भाग मिलता है, वह संपूर्ण बँधने वाली एक ही प्रकृति का बंध होता है, क्योंकि गोत्र कर्म की एक समय में एक ही प्रकृति का बंध होता है ।

सम्मदरसव्वविरई अणविसंजोयदंस-खवगे य ।
मोहसमसंतखवगे खीणसजोगियर गुणसेढी ।।82।।

–: शब्दार्थ :–

सम्मदरसव्वविरई=सम्यक्त्व, देशविरति सर्वविरति,	**संत**=उपशान्तमोह
अणविसंजोय=अनन्तानुबंधी का विसंयोजन,	**खवगे**=क्षपण,
दंसखवगे=दर्शनमोहनीय का क्षपण,	**खीण**=क्षीणमोह,
मोहसम=मोहनीय का उपशमन,	**सजोगियर**=सयोगिकेवली और अयोगिकेवली,
	गुणसेढी=गुणश्रेणि

भावार्थ :–सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति, अनन्तानुबंधी का विसंयोजन, दर्शनमोहनीय का क्षपण, चारित्रमोहनीय का उपशमन, उपशान्त-मोह, क्षपण, क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये गुणश्रेणियां है ।

विवेचन :–शुभ परिणामों से बंधे हुए कर्मों की स्थिति और रस का घात हो सकता है, परंतु उन कर्मों के दलिकों का वेदन किए बिना निर्जरा नहीं होती है ।

निर्जरा दो प्रकार से होती है–

(1) औपक्रमिक निर्जरा : प्रति समय उदय द्वारा कर्मदलिकों की निर्जरा होती है, उसे औपक्रमिक निर्जरा कहते हैं ।

उस निर्जरा के समय प्रतिसमय कर्मों का बंध भी चालू रहता है, अतः आत्मा कर्मों से मुक्त नहीं हो पाती है ।

(2) गुणश्रेणि निर्जरा : अल्प समय में अधिक से अधिक कर्मों की निर्जरा को गुणश्रेणि निर्जरा कहते हैं । ज्यों ज्यों आत्मा में भावों की विशुद्धि होती है, त्यों-त्यों अत्यधिक निर्जरा होती है ।

गुणश्रेणि निर्जरा के 11 भेद हैं –

(1) सम्यक्त्वप्राप्ति : सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय अपूर्वकरण आदि करण करते समय जीव असंख्यात गुणी निर्जरा करता है-सम्यक्त्वप्राप्ति के बाद भी वह क्रम चालू रहता है ।

आगे की गुणश्रेणियों में कम समय में अधिक निर्जरा होती है ।

(2) देशविरति गुण श्रेणि : सम्यक्त्वप्राप्ति के बाद जब जीव देशविरति स्वीकार करता है, तब दूसरी गुणश्रेणि होती है, इसमें प्रथमश्रेणि की अपेक्षा कम समय में असंख्यात गुणनिर्जरा होती है।

(3) सर्वविरति गुणश्रेणि : देशविरति की अपेक्षा इसमें अनंतगुणी विशुद्धि होती है । कम समय में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है ।

(4) अनंतानुबंधी कषाय विसंयोजना : अनंतानुबंधी कषायों के सभी दलिकों को अन्य कषायों में परिणत करता है तब यह चौथी गुणश्रेणि होती है ।

(5) दर्शनमोहनीय क्षपण : समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय का नाश करते समय पाँचवीं गुणश्रेणि होती है ।

(6) चारित्र मोहनीय का उपशमन : चारित्र मोहनीय का उपशमन करते समय आठवें-नौवें और दसवें गुणस्थान में छठी गुणश्रेणि होती है ।

(7) उपशांत मोह : ग्यारहवें गुणस्थानक में मोह का उपशमन करते समय 7 वीं गुणश्रेणि होती है ।

(8) चारित्र मोह क्षपण : मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय करते समय आठवीं गुणश्रेणि होती है ।

(9) क्षीणमोह : बारहवें गुणस्थान में नौवीं गुणश्रेणि होती है ।

(10) सयोगी केवली : 13 वें गुणस्थानक में दसवीं गुणश्रेणि होती है ।

(11) अयोगी केवली : 14 वें गुणस्थानक में ग्यारहवीं गुणश्रेणि होती है ।

इन सभी गुणश्रेणियों में उत्तरोत्तर असंख्यात गुणी निर्जरा होती है, परंतु वेदनकाल संख्यात गुण असंख्यात गुण हीन होता है ।

गुणसेढी दलरयणाऽणुसमयमुदयादसंखगुणणाए ।
एयगुणा पुण कमसो असंखगुण निज्जरा जीवा ।।83।।

—: शब्दार्थ :—

गुणसेढ़ी=गुणाकार प्रदेशों की रचना,	**एयगुणा**=ये पूर्वोक्त गुणवाले,
दलरयणा=ऊपर की स्थिति से उतरते हुए प्रदेशाग्र की रचना,	**पुणा**=पुनः
अणुसमयं=प्रत्येक समय की,	**कमलो**=अनुक्रम से,
उदयाद=उदय क्षण से,	**असंखगुणनिज्जरा**=असंख्यात गुण निर्जरा वाले,
असंखगुणणाए=असंख्य गुणना ते	**जीवा**=जीव

भावार्थ :—ऊपर की स्थिति से उदय क्षण से लेकर प्रतिसमय असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे कर्मदलिकों की रचना को गुणश्रेणि कहते हैं तथा पूर्वोक्त सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति आदि गुण वाले जीव अनुक्रम से असंख्यात गुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा करते हैं ।

विवेचन :—पूर्व में जो सम्यक्त्व, देशविरति आदि ग्यारह् नाम बतलाये हैं वे स्वयं गुणश्रेणि नहीं हैं किन्तु उन-उनमें क्रम से असंख्यातगुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा होने से गुणश्रेणि के कारण हैं । अतः करण में कार्य का उपचार करके उन्हें गुणश्रेणि कहा जाता है । गुणश्रेणि तो एक क्रियाविशेष है ।

इस क्रिया का-प्रारम्भ सम्यक्त्वप्राप्ति से होता है । सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए जीव यथाप्रवृत्तकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक तीन करणों को करता है । अपूर्वकरण में प्रवेश करते ही चार काम प्रारम्भ हो जाते हैं—

एक स्थितिघात, दूसरा रसघात, तीसरा नवीन स्थितिबंध और चौथा गुणश्रेणि। स्थितिघात के द्वारा पहले बाँधे हुए कर्मों की स्थिति को कम कर दिया जाता है। अर्थात् स्थितिघात के द्वारा उन्हीं दलिकों की स्थिति का घात किया जाता है जिनकी स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त से अधिक होती है। अतः स्थिति का घात कर देने से जो कर्मदलिक बहुत समय बाद उदय में आते हैं वे तुरन्त ही उदय में आने योग्य हो जाते हैं। जिन कर्मदलिकों की स्थिति कम हो जाती है उनमें से प्रतिसमय असंख्यातगुणे, असंख्यातगुणे दलिक ग्रहण करके उदय समय से लेकर ऊपर की ओर स्थापित कर दिये जाते हैं।

ऊपर की स्थिति से कर्मदलिकों को ग्रहण करके उनमें से उदय समय में थोड़े दलिकों का निक्षेप होता है, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणे दलिकों का निक्षेपण होता है। इसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल के अन्तिम समय तक प्रतिसमय असंख्यातगुणे, असंख्यातगुणे दलिकों का निक्षेपण किया जाता है। अर्थात् पहले समय में जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं, उनमें से थोड़े दलिक उदय समय में दाखिल कर दिये जाते हैं, उससे असंख्यातगुणे दलिक उदय समय से ऊपर के द्वितीय समय में दाखिल कर दिये जाते हैं, उससे असंख्यातगुणे दलिक तीसरे समय में, उससे असंख्यातगुणे दलिक क्रमशः चौथे, पाँचवें आदि समयों में दाखिल कर दिये जाते हैं। इसी क्रम से अन्तर्मुहूर्त काल के अंतिम समय तक असंख्यातगुणे, असंख्यातगुणे दलिकों की स्थापना की जाती है। यह तो हुई प्रथम समय में गृहीत दलिकों के स्थापन करने की विधि। इसी प्रकार शेष दूसरे, तीसरे चौथे आदि समयों में गृहीत दलिकों के निक्षेपण की विधि जानना चाहिए। यह क्रिया अन्तर्मुहूर्त काल के समयों तक ही होती रहती है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक असंख्यात गुणित क्रम से जो दलिकों की स्थापना की जाती है, उसे गुणिश्रेणि कहते हैं।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय जीव इस प्रकार की गुणश्रेणि रचना करता है। गुणश्रेणि उदय समय से होती है और ऊपर-ऊपर असंख्यात गुणे दलिक स्थापित किये जाते हैं। अतः गुणश्रेणि करनेवाला जीव ज्यों-ज्यों ऊपर की ओर चढ़ता है त्यों-त्यों प्रति समय असंख्यातगुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा करता जाता है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद देशविरति और सर्वविरति की प्राप्ति के लिए जीव यथाप्रवृत्त और अपूर्वकरण ही करता है, तीसरा अनिवृत्तिकरण नहीं करता और अपूर्वकरण में यहाँ गुणश्रेणि रचना भी नहीं होती है और अपूर्वकरण

का काल समाप्त होने पर निश्चित ही देशविरति या सर्वविरति की प्राप्ति हो जाती है । जिससे अनिवृत्तिकरण की आवश्यकता नहीं रहती है ।

उक्त दोनों करण-यथाप्रवृत्त, अपूर्वकरण यदि अविरत दशा में किये जाते हैं तब तो देशविरति या सर्वविरति की प्राप्ति होती है और यदि देशविरति दशा में किये जाते हैं तो सर्वविरति ही प्राप्त होती है । देशविरति अथवा सर्वविरति की प्राप्ति होने पर जीव उदयावलि के ऊपर गुणश्रेणि की रचना करता है । जो प्रकृतियाँ उदयवती होती हैं, उनमें तो उदय क्षण से लेकर ही गुणश्रेणि होती है किन्तु अनुदयवती प्रकृतियों में उदयावलिका के ऊपर के समय से लेकर गुणश्रेणि होती है । पाँचवें गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण और छठे गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण कषाय अनुदयवती हैं अतः उनमें उदयावलिका को छोड़कर ऊपर के समय से गुणश्रेणि होती है ।

देशविरति और सर्वविरति की प्राप्ति के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव के परिणाम वर्धमान ही रहते हैं, लेकिन उसके बाद कोई नियम नहीं है । किसी के परिणाम वर्धमान भी रहते हैं, किसी के तदवस्थ रहते हैं और किसी के हीयमान हो जाते हैं तथा जब तक देशविरति या सर्वविरति रहती है तब तक प्रतिसमय गुणश्रेणि भी होती है । देशविरति और सर्वविरति में प्रतिसमय असंख्यातगुणी निर्जरा होती है ।

चौथी गुणश्रेणि का नाम है अनन्तानुबंधी की विसंयोजना । अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरति और सर्वविरति जीव करते हैं । अविरत सम्यग्दृष्टि जीव तो चारों गतियों के लेने चाहिए और देशविरति मनुष्य व तिर्यंच होते हैं तथा सर्वविरति मनुष्य ही होते हैं ।

जो जीव अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करने के लिए उद्यत होता है वह यथाप्रवृत्त आदि तीनों करणों को करता है । यहाँ इतनी विशेषता है कि अपूर्वकरण के प्रथम समय से ही गुणसंक्रमण भी होने लगता है यानी अपूर्वकरण के प्रथम समय में अनन्तानुबंधी कषाय के थोड़े दलिकों का शेष कषायों में संक्रमण करता है, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणे, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणे दलिकों का परकषाय रूप संक्रमण करता है । यह क्रिया अपूर्वकरण के अंतिम समय तक होती है और उसके बाद अनिवृत्तिकरण में गुण संक्रमण और उद्वेलन संक्रमण के द्वारा दलिकों का विनाश कर देता है । इस प्रकार अनन्तानुबन्धी के विसंयोजन में प्रति समय असंख्यातगुणी निर्जरा जाननी चाहिए ।

दर्शनमोहनीय का क्षपण जिन काल में (केवलज्ञानी के विद्यमान रहने के समय में) उत्पन्न होने वाला वज्रऋषभनाराच संहनन का धारक मनुष्य आठ वर्ष की उम्र के बाद करता है । अर्थात् दर्शनमोहनीय की क्षपणा के लिए समय तो केवलज्ञानप्राप्त आत्मा की विद्यमानता का है और क्षपणा करने वाला मनुष्य वज्रऋषभनाराच संहनन का धारक हो तथा कम-से-कम अवस्था आठ वर्ष से ऊपर हो । दर्शनमोहनीय की क्षपणा का क्रम भी अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजना जैसा है । यहाँ भी पूर्ववत् तीन करण होते हैं, अपूर्वकरण में गुणश्रेणि आदि कार्य होते हैं ।

उपशम श्रेणि का आरोहण करनेवाला जीव भी यथाप्रवृत्त आदि तीन करणों को करता है, लेकिन इतना अंतर है कि यथाप्रवृत्तकरण सातवें गुणस्थान में करता है, अपूर्वकरण-अपूर्वकरण नामक गुणस्थान में और अनिवृत्तिकरण अनिवृत्तिकरण नामक गुणस्थान में करता है । यहाँ भी पूर्ववत् स्थितिघात गुणश्रेणि आदि कार्य होते हैं । अतः उपशमक भी क्रम से असंख्यातगुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा करता है ।

चारित्रमोहनीय का उपशम करने के बाद उपशांतमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचकर भी जीव गुणश्रेणि रचना करता है । उपशान्तमोह का काल अन्तर्मुहूर्त है, और उसके संख्यातवें भाग काल में गुणश्रेणि की रचना होती है, जिससे यहाँ पर भी जीव प्रति समय असंख्यातगुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा करता है ।

ग्यारहवें गुणस्थान से च्युत होकर जब जीव छठे गुणस्थान तक आकर क्षपकश्रेणि चढ़ता है अथवा उपशमश्रेणि पर आरूढ़ हुए बिना ही सीधा क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है तो वहाँ भी यथाप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन तीनों करणों को करता है और उनमें उपशमक और उपशान्तमोह गुणस्थान से भी असंख्यातगुणी निर्जरा करता है । इसी प्रकार क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली नामक गुणश्रेणियों में भी उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा समझना चाहिए ।

इन ग्यारह गुणश्रेणियों में से प्रत्येक का काल अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त होने पर भी प्रत्येक के अन्तर्मुहूर्त का काल उत्तरोत्तर हीन होता है तथा निर्जरा द्रव्य का परिमाण सामान्य से असंख्यातगुणा, असंख्यातगुणा होने पर भी उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ होता है । यानी परिणामों के उत्तरोत्तर विशुद्ध होने से उत्तरोत्तर कम-कम समय में अधिक-अधिक द्रव्य की निर्जरा होती है ।

गुणस्थानों में अंतरकाल

पलियासंखंसमुहू सासणइयरगुण अंतरं हस्सं ।
गुरु मिच्छी बे छसट्ठी इयरगुणे पुग्गलद्धंतो ।।84।।

–: शब्दार्थ :–

पलियासंखंसमुहू=पल्य का असंख्यातवाँ भाग और अन्तर्मुहूर्त	**गुरु**=उत्कृष्ट,
सासणइयरगुण=सासादन और दूसरे गुणस्थानों का,	**मिच्छी**=मिथ्यात्व में,
अंतरं=अन्तर,	**बे छसट्ठी**=दो छियासठ सागरोपम,
हस्सं=जघन्य,	**इयरगुणे**=दूसरे गुणस्थानों में,
	पुग्गलद्धंतो=कुछ न्यून अर्धपुद्गल परावर्त ।

भावार्थ :–सासादन और दूसरे गुणस्थानों का जघन्य अन्तर अनुक्रम से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अन्तर्मुहूर्त है । मिथ्यात्व गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर दो बार के छियासठ सागर अर्थात् 132 सागर है । और अन्य गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्त है ।

विवेचन :–कोई जीव किसी गुणस्थान से च्युत होकर पुनः जितने समय बाद उसी गुणस्थान को प्राप्त करता है, वह उस गुणस्थान का अंतरकाल कहलाता है ।

सास्वादन गुणस्थान का अंतरकाल जघन्य से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है । कोई जीव सास्वादन गुणस्थान छोड़ मिथ्यात्व में आकर पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल से पुनः उसी गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है ।

सास्वादन से मिथ्यात्व गुणस्थान में आने पर समकित मोहनीय और मिश्र मोहनीय की सत्ता अवश्य होती है । उन दोनों की सत्ता होने पर औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता है । औपशमिक सम्यक्त्व बिना सास्वादन गुणस्थान नहीं होता है । अतः मिथ्यात्व में जाने के बाद जीव समकित मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय की उद्वेलना कर उन दोनों दलिकों को मिथ्यात्व रूप में परिणत करता है । इस उद्वेलन में पल्योपम का असंख्य

भाग बीतने पर उन दोनों प्रकृतियों का अभाव होने पर जीव पुनः उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सास्वादन गुणस्थान प्राप्त कर सकता है ।

क्षीणमोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली में अंतर काल नहीं होता है, क्योंकि ये गुणस्थान भवचक्र में एक ही बार प्राप्त होते हैं ।

1. शेष मिथ्यात्व, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त तथा उपशम श्रेणी के अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानों का अंतरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

एक भव में दो बार उपशम श्रेणी हो सकती है, अतः अन्तर्मुहूर्त बाद पुनः उपशम श्रेणी होने पर जघन्य अंतर अन्तर्मुहूर्त रहता है ।

उत्कृष्ट अंतरकाल :

मिथ्यात्व गुणस्थान का उत्कृष्ट अंतरकाल 132 सागरोपम है ।

कोई जीव विशुद्ध परिणामों से क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर 66 सागरोपम के बाद मिश्र गुणस्थान में चला जाय, वहाँ अन्तर्मुहूर्त बाद पुनः क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर 66 सागरोपम बाद मोक्ष में न जाकर मिथ्यात्व में आ जाय तो यह उत्कृष्ट अंतर 132 सागरोपम घट सकता है ।

सास्वादन से उपशांतमोह गुणस्थानक तक के शेष गुणस्थानों का उत्कृष्ट अंतर कुछ न्यून अर्ध पुद्गल परावर्तकाल है । अर्थात् उतने समय तक वह आत्मा संसार में भटक सकती है ।

उद्धारअद्धखित्तं पलिय तिहा समयवाससयसमए ।
केसवहारो दीवोदहिआउतसाइपरिमाण ।।85।।

–: शब्दार्थ :–

उद्धारअद्धखितं=उद्धार, अद्धा और क्षेत्र,	**केसवहारो**=बालाग्र का उद्धरण करें,
पलिय=पल्योपम,	**दीवोदहि**=द्वीप और समुद्र,
तिहा=तीन प्रकार का,	**आउतसाइ**=आयु और त्रसादि जीवों का,
समयवाससयसमए=समय, सौ वर्ष और समय में,	**परिमाणं**=परिमाण, गणना ।

भावार्थ :–उद्धार, अद्धा और क्षेत्र इस प्रकार पल्योपम के तीन भेद हैं। उनमें अनुक्रम से एक समय में, सौ वर्ष में और एक समय में बालाग्र का उद्धरण किया जाता है। जिससे उनके द्वारा क्रम से द्वीप समुद्रों, आयु और त्रसादि जीवों की गणना की जाती है।

विवेचन :–1. बादर उद्धार पल्योपम :

अनंत परमाणु = एक त्रसरेणु

8 त्रसरेणु = 1 स्थरेणु

8 स्थरेणु = 1 वालाग्र

8 वालाग्र = 1 लिक्षा

8 लिक्षा = 1 युका

8 युका = 1 यव

8 यव = 1 उत्संध अंगुल

24 उत्सेध अंगुल = 1 हाथ

4 हाथ = 1 धनुष

2000 धनुष = 1 गाउ

4 गाउ = 1 उत्सेध अंगुल का 1 योजन उत्सेध अंगुल से बने 1 योजन लंबे, चौड़े और गहरे एक गोल पल्य, जिसकी परिधि 3 1/6 योजन है, उस पल्य को एक से सात दिन के बालों से इतना ठूंस कर भर दे कि चक्रवर्ती की सेना चलने पर भी न दबे; फिर प्रतिसमय एक-एक बाल को बाहर निकालने में जितना समय लगे उसे बादर उद्धार पल्योपम कहते हैं।

10 कोड़ा-कोड़ी बादर उद्धार पल्योपम का एक बादर उद्धार सागरोपम होता है।

2. सूक्ष्म उद्धार पल्योपम : बादर उद्धार पल्य में रहे एक-एक केशाग्र के असंख्य टुकड़े करें।

वे टुकड़े द्रव्य से इतने सूक्ष्म हों कि विशुद्ध आँखवाला जितने सूक्ष्म पुद्गल द्रव्य को देख सकता हो, उसके असंख्यात भाग करें।

पंचम कर्मग्रंथ (भाग-5)

इन केशाग्रों को प्रतिसमय खाली करने पर संख्यात करोड़ वर्ष में वह पल्य खाली होता है । उस काल को सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते हैं ।

10 कोटा कोटी उद्धार पल्योपम का एक 1 उद्धार सूक्ष्म सागरोपम होता है ।

इस सूक्ष्म उद्धार पल्योपम से द्वीप-समुद्रों की गिनती होती है ।

पच्चीस कोटा-कोटि सूक्ष्म उद्धार पल्योपम के जितने समय होते हैं, उतने द्वीप और समुद्र हैं ।

3. बादर अद्धा पल्योपम : बादर उद्धार पल्य के एक-एक बाल को 100-100 वर्ष के बाद बाहर निकालने पर जितने काल में वह पल्य खाली हो उसे बादर अद्धा पल्योपम कहते हैं । 10 कोटा कोटि बादर अद्धा पल्योपम का एक बादर अद्धा सागरोपम होता है ।

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम : सूक्ष्म उद्धार पल्य में रहे केशाग्र को 100-100 वर्ष के बाद बाहर निकालने पर जब वह पल्य खाली हो, उस काल को सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते हैं ।

10 कोटा-कोटि अद्धा पल्योपम को एक अद्धा सागरोपम कहते हैं ।

इसी सूक्ष्म अद्धा पल्योपम व सागरोपम से देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारक के आयुष्य कर्मों की स्थिति आदि की गिनती होती है ।

बादर क्षेत्र पल्योपम : एक योजन लंबे, चौड़े व गहरे पल्य में 1 से 7 दिन के उगे बालों को भरा जाय । फिर वे बाल के अग्र भाग आकाश के जिन प्रदेशों का स्पर्श करे उन प्रदेशों को प्रतिसमय बाहर निकालने पर जितना काल लगे, उसे बादर क्षेत्र पल्योपम कहते हैं । यह काल असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण होता है ।

दस कोटा-कोटि बादर क्षेत्र पल्योपम का एक बादर क्षेत्र सागरोपम होता है ।

सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम : बादर क्षेत्र पल्य के बालाग्रों के असंख्य टुकड़े कर उस पल्य में से जिन आकाशप्रदेशों का स्पर्श करे और स्पर्श न करे, उन आकाश प्रदेशों को प्रतिसमय बाहर निकालने पर जो काल लगे उसे सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते हैं ।

10 कोटा-कोटि क्षेत्र सूक्ष्म पल्योपम का 1 सूक्ष्म क्षेत्र सागरोपम होता है ।

इस सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम व सागरोपम से दृष्टिवाद में रहे द्रव्यों के प्रमाण का विचार व पृथ्वीकाय आदि छह काय के जीवों का प्रमाण जाना जाता है ।

दव्वे खित्ते काले भावे चउह दुह बायरो सुहुमो ।
होइ अणंतुस्सप्पिणिपरिमाणो पुग्गलपरट्टो ।।86।।
उरलाइसत्तगेणं एगजिउ मुयइ फुसिय सव्वअणू ।
जत्तियकालि स थूलो दव्वे सुहुमो सगन्नयरा ।।87।।
लोगपएसोसप्पिणिसमया अणुभागबंधठाणा य ।
जह तह कममरणेणं पुट्ठा खित्ताइ थूलियरा ।।88।।

–: शब्दार्थ :–

दव्वे=द्रव्य विषयक,
खित्ते=क्षेत्र विषयक,
काले=काल विषयक,
भावे=भाव विषयक,
चउह=चार प्रकार का,
दुह=दो प्रकार का,
बायरो=बादर,
सुहुमो=सूक्ष्म,
होइ=होता है ।,
अणंतुस्सप्पिणिपरिमाणो=अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण,
पुग्गलपरट्टो=पुद्गल परावर्त,
उरलाइसत्तगेणं=औदारिक आदि सात वर्गणा रूप से,
एगजिउ=एक जीव,
मुयइ=छोड़ दे,
फुसिय=स्पर्श करके, परिणमित करके,
सव्वअणू=सभी परमाणुओं को,
जत्तियकालि=जितने समय में,
स=उतना काल,
थूलो=स्थूल, बादर,
दव्वे=द्रव्य पुद्गल परावर्त,
सुहुमो=सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त,
सगन्नयरा=साता में से किसी एक-एक वर्गणा के द्वारा,
लोगपएसा=लोक के प्रदेश,
उसप्पिणिसमया=उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी के समय,
अणुभागबंधठाणा=अनुभाग बंध के स्थान,
य=और

जह तह=जिस किसी भी प्रकार से,	**खित्ताइ**=क्षेत्रादिक,
कम=अनुक्रम से,	**थूलियरा**=स्थूल (बादर) और सूक्ष्म
मरणेणं=मरण के द्वारा,	पुद्गल परावर्त ।
पुट्ठा=स्पर्श किये हुए,	

भावार्थ :–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार वाले पुद्गल परावर्त के बादर और सूक्ष्म, ये दो-दो भेद होते हैं । यह पुद्गल परावर्त अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी काल के बराबर होता है ।

जितने काल में एक जीव समस्त लोक में रहने वाले समस्त परमाणुओं को औदारिक शरीर आदि सात वर्गणा रूप से ग्रहण करके छोड़ देता है, उतने काल को बादर द्रव्यपुद्गल परावर्त कहते है और जितने काल में समस्त परमाणुओं को औदारिक शरीर आदि सात वर्गणाओं में से किसी एक वर्गणा रूप से ग्रहण करके छोड़ देता है, उतने काल को सूक्ष्म द्रव्यपुद्गल परावर्त कहते हैं ।

एक जीव अपने मरण के द्वारा लोकाकाश के समस्त प्रदेशों, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के समय तथा अनुभाग बंध के स्थानों को जिस किसी भी प्रकार (बिना क्रम के) से और अनुक्रम से स्पर्श कर लेता है, तब क्रमशः बादर और सूक्ष्म क्षेत्रादि पुद्गल परावर्त होते हैं ।

विवेचन :–1. बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त काल : यह विश्व पुद्गल वर्गणाओं से भरा हुआ है । इनमें आठ प्रकार की ग्रहण योग्य वर्गणाएँ हैं ।

एक जीव जगत् में रहे सभी पुद्गल परमाणुओं को आहारक ग्रहण योग्य वर्गणा को छोड़ शेष औदारिक, वैक्रिय आदि 7 वर्गणाओं में परिणत कर उन्हें भोग कर छोड़ता है उस काल को बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त काल कहते हैं ।

2. सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त काल : जगत् में रहे सभी पुद्गल परमाणुओं को 7 वर्गणाओं में से औदारिक आदि चार (औदारिक, वैक्रिय, तैजस व कार्मण) वर्गणा के रूप में सभी को परिणत कर भोग ले, उस काल को सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त काल कहते है ।

3. बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त काल : चौदह राजलोक के सभी आकाश प्रदेशों का क्रम या अक्रम से स्पर्श कर मृत्यु प्राप्त करे, उसे बादरक्षेत्र पुद्गल

परावर्त काल कहते हैं ।

4. सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त काल : कोई जीव किसी एक आकाश-प्रदेश का स्पर्श कर मरे फिर पुनः उसके पास में रहे आकाशप्रदेश का स्पर्श कर मरे, इस प्रकार क्रम से सभी आकाशप्रदेशों का स्पर्श कर मर जाए उस काल को सूक्ष्म पुद्गल परावर्तकाल कहते हैं ।

5. बादर काल पुद्गल परावर्त काल : एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के सभी समयों में क्रम या अक्रम से मरे उतने काल को बादर काल पुद्गल परावर्तकाल कहते हैं ।

6. सूक्ष्मकाल पुद्गल परावर्त काल : एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के सभी समयों का क्रम से स्पर्श करता हुआ मरे, उस काल को सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्तकाल कहते हैं ।

7. बादर भाव पुद्गल परावर्त काल : अनुभाग बंधस्थान कषायस्थान तरतम भेद से असंख्यात लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं । उन अनुभाग बंधस्थानों में से किसी एक-एक अनुभाग बंधस्थान में क्रम या अक्रम से मरता है, वह बादर भाव पुद्गल परावर्तकाल कहलाता है ।

8. सूक्ष्मभाव पुद्गल परावर्त काल : कोई जीव सबसे जघन्य अनुभाग बंध स्थान में मरा हो, फिर उसके पास रहे अनुभाग बंध स्थान में मरे, इस प्रकार क्रमश, सभी अनुभाग बंध स्थानों में मरे उतने काल को सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त काल कहते है ।

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

प्रदेश-बंध

अप्पयरपयडिबंधी उक्कडजोगी य सन्निपज्जत्तो ।
कुणइ पएसुक्कोसं जहलयं तस्स वच्चम्से ।।89।।

–: शब्दार्थ :–

अप्पयरपयडिबंधी=अल्पतर प्रकृतियों का बंध करनेवाला,
उक्कड़जोगी=उत्कृष्ट योग का धारक,
य=और,
सन्निपज्जत्तो=संज्ञी पर्याप्त
कुणइ=करता है,
पएसुक्कोसं=प्रदेशों का उत्कृष्ट बंध,
जहन्नयं=जघन्य प्रदेश बंध,
तस्स=उसका,
वच्चासे=विपरीतता से ।

भावार्थ :–अल्पतर प्रकृतियों का बंध करने वाला उत्कृष्ट योग का धारक और पर्याप्त सेज्ञी जीव उत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है तथा इसके विपरीत अर्थात् बहुत प्रकृतियों का बंध करने वाला जघन्य योग का धारक अपर्याप्त असंज्ञी जीव जघन्य प्रदेशबंध करता है ।

विवेचन :–इस गाथा में उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशबंध के स्वामी का निर्देश किया गया है ।

उत्कृष्ट प्रदेश बंध के स्वामी : इसके चार विशेषण बताते हुए कहते हैं–

(1) थोड़ी प्रकृतियों का बंधक हो : कर्मबंध की मुख्य आठ प्रकृतियाँ और 120 उत्तर प्रकृतियाँ हैं, जो जीव मूल और उत्तर अल्प प्रकृतियों का बंधक होगा-वह उत्कृष्ट बंध कर सकेगा ।

(2) उत्कृष्ट योग : प्रदेशबंध का मुख्य आधार योग है, अतः जिसके पास उत्कृष्ट योग होगा वह अधिक प्रदेशबंध कर सकेगा ।

(3-4) संज्ञी-पर्याप्त : असंज्ञी की अपेक्षा संज्ञी जीव तथा अपर्याप्ता की अपेक्षा पर्याप्ता जीव अधिक प्रदेशबंध करता है । इस प्रकार अल्प प्रकृतियों को

बाँधने वाला, उत्कृष्ट योग का धारक, संज्ञी व पर्याप्ता जीव उत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है, जबकि कर्मों की अधिक प्रकृतियों को बाँधने वाला अल्प योग का धारक, असंज्ञी व अपर्याप्ता जीव अल्प प्रदेशबंध करता है ।

मिच्छ अजयचउ आऊ बितिगुणबिणु मोहि सत्त मिच्छाई ।
छण्हं सतरस सुहुमो अजया देसा बितिकसाए ।।90।।

—: शब्दार्थ :—

मिच्छ=मिथ्यादृष्टि,
अजयचउ=अविरत सम्यग् दृष्टि आदि चार गुणस्थान वाले
आऊ=आयु कर्म का,
बितिगुणबिणु=दूसरे और तीसरे गुणस्थान के बिना,
मोहि=मोहनीय कर्म का,
सत्त=सात गुणस्थान वाले,
मिच्छाई=मिथ्यात्वादि
छण्हं=छह मूल प्रकृतियों का,
सतरस=सत्रह प्रकृतियों का,
सुहुमो=सूक्ष्म संपराय गुणस्थान वाला,
अजया=अविरत सम्यग्दृष्टि,
देसा=देशविरति,
बितिकसाय=दूसरी और तीसरी कषाय का ।

भावार्थ :—मिथ्यादृष्टि और अविरत आदि चार गुणस्थान वाले आयुकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशबंध करते हैं । दूसरे और तीसरे गुणस्थान के सिवाय मिथ्यात्व आदि सात गुणस्थान वाले मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट प्रदेशबंध तथा शेष छह कर्मों और उनकी सत्रह प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान नामक दसवें गुणस्थान मे रहने वाले करते हैं । द्वितीय कषाय का उत्कृष्ट प्रदेशबंध अविरत सम्यग्दृष्टि जीव तथा तीसरी कषाय का उत्कृष्ट प्रदेशबंध देशविरति करते हैं ।

विवेचन :—आयुष्य कर्म का उत्कृष्ट प्रदेश बंध पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में तथा चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें अप्रमत्त गुणस्थानक में होता है ।

तीसरे व आठवें आदि गुणस्थानों में तो आयु का बंध होता ही नहीं है । दूसरे सास्वादन गुणस्थान में आयुष्य का बंध होता है, परंतु वहाँ उत्कृष्ट योग नहीं होने से उत्कृष्ट बंध नहीं होता है ।

मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिथ्यात्व, अविरत, देशविरत,

प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण इन सात गुणस्थानों में होता है । सास्वादन व मिश्र में उत्कृष्ट योग नहीं होता है, क्योंकि वहाँ उत्कृष्ट प्रदेशबंध नहीं होता है ।

आयु व मोहनीय को छोड़ शेष छह कर्मों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्म संपराय नामक दसवें गुणस्थानक में होता है । वहां उत्कृष्ट योग के साथ अल्प कर्मों का भी बंध है ।

मतिज्ञानावरण आदि पाँच, चक्षु दर्शनावरण आदि चार, दानांतराय आदि पाँच तथा सातावेदनीय, यशकीर्ति तथा उच्च गोत्र, इन 17 प्रकृतियों का भी उत्कृष्ट बंध दसवें गुणस्थान में होता है ।

अप्रत्याख्यान चतुष्क का उत्कृष्ट प्रदेश बंध चौथे गुणस्थान में, प्रत्याख्यान चतुष्क का उत्कृष्ट प्रदेशबंध पाँचवें देशविरति गुणस्थान में होता है ।

पण अनियट्टी सुखगइ नराउ-सुरसुभ, गतिग-विउव्विदुगं ।
समचउरंसमसायं वइरं मिच्छो व सम्मो वा ।।91।।
निद्दापयलादुजुयलभयकुच्छातित्थ सम्मगो सुजई ।
आहारदुगं सेसा उक्कोसपएसगा मिच्छो ।।92।।

–: शब्दार्थ :–

पण=पाँच (पुरुषवेद और संज्वलन चतुष्क)
अनियट्टी=अनिवृत्तिबादर गुणस्थान वाला
सुखगइ=शुभ विहायोगति,
नराउ=मनुष्यायु,
सुरसुभगतिग=देवत्रिक और सुभगत्रिक,
विउव्विदुगं=वैक्रियद्विक,
समचउरंसं=समचतुरस्त्र संस्थान,
असायं=असाता वेदनीय,
वइरं=वज्रऋषभनाराच संहनन,
मिच्छो=मिथ्यादृष्टि,
व=अथवा,
सम्मो=सम्यग्दृष्टि,
वा=अथवा,
निद्दापयला=निद्रा और प्रचला,
दुजुयल=दो युगल,
भय-कुच्छातित्थ=भय, जुगुप्सा और तीर्थंकर नामकर्म,
सम्मगो=सम्यग्दृष्टि,

सुजई=अप्रमत्त यति और अपूर्वकरण गुणस्थान वाला,	**सेसा**=बाकी की प्रकृतियों का,
आहारदुगं=आहारकद्विक का,	**उक्कोसपएसगा**=उत्कृष्ट प्रदेश बंध
	मिच्छो=मिथ्यादृष्टि (करता है) ।

भावार्थ :–अनिवृत्तिबादर गुणस्थान में पाँच (पुरुषवेद, संज्वलन चतुष्क) प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध होता है । शुभ विहायोगति, मनुष्यायु, देवत्रिक, सुभगत्रिक, वैक्रियद्विक, समचतुरस्त्रसंस्थान, असातावेदनीय, वज्रऋषभनाराच संहनन, इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव करते है ।

निद्रा, प्रचला, दो युगल (हास्य-रति और शोक-अरति), भय, जुगुप्सा, तीर्थंकर, इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं । आहारद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशबंध अप्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती मुनि और शेष प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

विवेचन :–पूर्व गाथा में उत्कृष्ट प्रदेशबंध योग्य 25 उत्तर प्रकृतियों के निर्देश के बाद अब शेष 95 प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशबंध का निर्देश इस गाथा में करते हैं ।

95 प्रकृतियों के उत्कृष्ट बंध के पाँच विभाग किये हैं–

(1) संज्वलन चतुष्क तथा पुरुष वेद का उत्कृष्ट प्रदेशबंध नौवें गुण-स्थान में होता है ।

(2) शुभ विहायोगति, मनुष्य आयु, देवत्रिक, सुभगत्रिक (सुभग, सुस्वर, आदेय) वैक्रियद्विक (वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग) समचतुरस्त्र संस्थान, असातावेदनीय, वज्रऋषभ नाराच संघयण इन 13 का उत्कृष्ट बंध सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ।

(3) निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, शोक, अरति, भय, जुगुप्सा और तीर्थंकर नामकर्म इन नौ प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश बंध सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं ।

हास्य, रति, शोक, अरति, भय और जुगुप्सा इन छह का उत्कृष्ट प्रदेश बंध चौथे से आठवें में जिन-जिन गुणस्थानों में बंध होता है, उन-उन गुणस्थानों में उत्कृष्ट योगवाले सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं ।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि जीव ही करते हैं, अतः सम्यग्दृष्टि

जीव को निद्रादि 9 प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध करनेवाला कहा है ।

(4) आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग इन दो प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेश बंध सातवें और आठवें गुणस्थानवर्ती मुनि को होता है ।

(5) शेष रही प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिथ्यादृष्टि जीव को होता है ।

सुमुणी दुन्नि असन्नी निरयतिगसुराउसुरविउव्विदुगं ।
सम्मो जिणं जहन्नं सुहुमनिगोयाइखणि सेसा ।।93।।

–: शब्दार्थ :–

सुमुणी=अप्रमत्त यति,
दुन्नि=दो प्रकृतियों (आहारकद्विक का),
असन्नी=असंज्ञी,
निरयतिग=नरकत्रिक,
सुराउ=देवायु,
सुरविउव्विदुगं=देवद्विक और वैक्रियद्विक,
सम्मो=सम्यग्दृष्टि,
जिणं=तीर्थंकर नामकर्म का,
जहन्नं=जघन्य,
सुहुमनिगोय=सूक्ष्म निगोदिया जीव,
आइखणि=उत्पत्ति के पहले समय में,
सेसा=शेष रही हुई प्रकृतियों का

भावार्थ :–अप्रमत्त मुनि आहारकद्विक का जघन्य प्रदेशबंध करते हैं । असंज्ञी जीव नरकत्रिक और देवायु का तथा सम्यग्दृष्टि जीव देवद्विक, वैक्रियद्विक और तीर्थंकर प्रकृति का जघन्य प्रदेशबन्ध करते हैं । इनके सिवाय शेष रही हुई प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध सूक्ष्म निगोदिया जीव उत्पत्ति के प्रथम समय में करते हैं ।

विवेचन :–परावर्तमान योगवाले अप्रमत्त मुनि आठ कर्मों का बंध करते समय नामकर्म की 31 प्रकृति बाँधते समय आहारकद्विक का जघन्य प्रदेशबंध करते हैं ।

परावर्तमान योगवाला असंज्ञी जीव नरकत्रिक (नरकगति, नरकानुपूर्वी व नरकायु) व देवायु का जघन्य प्रदेशबंध करता है ।

देवद्विक (देवगति,देवानुपूर्वी) वैक्रियद्विक (वैक्रिय शरीर वैक्रिय अंगोपांग) तथा तीर्थंकर नामकर्म इन पाँच प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि जीव करता है । कोई मनुष्य तीर्थंकर नाम कर्म का बंधकर देव में पैदा हो तो

वहाँ उत्पत्ति के प्रथम समय में तीर्थंकर प्रकृति सहित मनुष्यगति योग्य 30 का बंध करते समय तीर्थंकर प्रकृति का जघन्य प्रदेशबंध करता है ।

देवद्विक व वैक्रियद्विक का जघन्य प्रदेशबंध देव या नरक से मनुष्य-भव में आनेवाले जीव को 29 प्रकृतियों का बंध करते समय होता है ।

उपर्युक्त 11 प्रकृतियों को छोड़ 109 प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध सूक्ष्म निगोद में लब्धि अपर्याप्त जीव उत्पत्ति के पहले समय में करता है ।

दंसणछगभयकुच्छाबितितुरियकसाय विग्घनाणाणं ।
मूलछगेऽणुक्कोसो चउह दुहा सेसि सव्वत्थ ।।94।।

–: शब्दार्थ :–

दंसणछग=दर्शनावरणषट्क,	**मूलछगे**=मूल छह प्रकृतियों का,
भयकुच्छा=भय और जुगुप्सा,	**अणुक्कोसो**=अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध,
वितितुरियकसाय=दूसरी, तीसरी और चौथी कषाय,	**चउह**=चार प्रकार का,
	दुहा=दो प्रकार का,
विग्घनाणाणं=पाँच अंतराय, पाँच ज्ञानावरण,	**सेसि**=शेष तीन प्रकार के बंधों में,
	सव्वत्थ=सर्वत्र होते हैं ।

भावार्थ :–दर्शनावरण कर्म की छह प्रकृतियों का, दूसरी तीसरी और चौथी कषाय का, पाँच अन्तराय और पाँच ज्ञानावरण का, छह मूल कर्मों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध चारों प्रकार का होता है । उक्त प्रकृतियों के तथा उनके सिवाय शेष प्रकृतियों के तीन बंध दो प्रकार के होते हैं ।

विवेचन :–प्रदेश बंध के चार प्रकार हैं : 1) उत्कृष्ट प्रदेशबंध, 2) अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध, 3) जघन्य प्रदेशबंध, 4) अजघन्य प्रदेशबंध ।

1. उत्कृष्ट : सबसे अधिक कार्मण स्कंधों को ग्रहण करना, उसे उत्कृष्ट प्रदेशबंध कहते हैं ।

2. अनुत्कृष्ट : उत्कृष्ट बंध में एक-एक घटाते जायें, जघन्य से पहले तक के बंध को अनुत्कृष्ट बंध कहते हैं ।

3. जघन्य : सबसे कम कार्मण स्कंधों को ग्रहण करना, उसे जघन्य-बंध कहते हैं ।

4. अजघन्य बंध : जघन्य में 1-1 स्कंध बढ़ाते जायें, उत्कृष्ट के पहले तक के बंध को अजघन्य बंध कहते हैं ।

मूल 8 कर्मों में उत्कृष्ट आदि भंग :

1. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में रही आत्मा ज्ञानावरणीय आदि छह कर्मों का 1-2 समय तक उत्कृष्ट बंध कर अनुत्कृष्ट बंध करता है, उस समय 6 कर्मों के अनुत्कृष्ट बंध की सादि होती है ।

2. दसवें गुणस्थान के अंत में उत्कृष्ट बंधकर 11 वें में जाता है, फिर वहां से गिरते हुए 10 वें गुणस्थान में आकर अनुत्कृष्ट बंध करता है । वहाँ अनुत्कृष्ट बंध की सादि होती है ।

3. जो जीव 10 वें गुणस्थान में कभी नहीं आए हैं, उन जीवों को छह कर्मों का अनुत्कृष्ट बंध अनादि है ।

4. अभव्य को अनुत्कृष्ट बंध का कभी अंत नहीं आता है, अतः अभव्य को कर्मों का अनुत्कृष्ट बंध ध्रुव (अनादि) है ।

भव्य को अनुत्कृष्ट बंध का कभी अंत आ जाता है, अतः उसे अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध अध्रुव है ।

5. सूक्ष्म संपराय में रहे को ज्ञानावरणादि छह कर्मों के उत्कृष्ट बंध की सादि होती है और 1-2 समय तक उत्कृष्ट बंध करता है, फिर ज्ञानावरणादि 6 कर्मों का उत्कृष्ट बंध अध्रुव (सांत) होता है ।

मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व आदि छह गुणस्थानक में रहा जीव मोहनीय का उत्कृष्ट बंध करता है, तब मोहनीय के उत्कृष्ट प्रदेशबंध की सादि होती है । 1-2 समय बाद उत्कृष्ट बंध पूर्ण होता है, अतः मोहनीय का उत्कृष्ट प्रदेशबंध अध्रुव होता है उसके बाद मोहनीय के अनुत्कृष्ट बंध की सादि होती है ।

फिर समय बीतने पर मोहनीय का उत्कृष्ट बंध करता है, उस समय मोहनीय का अनुत्कृष्ट प्रदेश बंध अध्रुव होता है ।

इस प्रकार मोहनीय का उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध बार बार होने से दोनों प्रदेशबंध सादि (अध्रुव) हैं ।

लब्धि अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद जीव को भव के प्रथम समय में आयु को छोड़ 7 कर्मों का जघन्य प्रदेशबंध होता है-दूसरे समय में 7 कर्मों का अजघन्य प्रदेशबंध होता है ।

वही जीव कालांतर में लब्धि अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद में उत्पन्न होने पर भव के प्रारंभ में जघन्य प्रदेशबंध करता है, इस प्रकार जघन्य व अजघन्य प्रदेशबंध बार बार होने से दोनों प्रदेशबंध सादि-अध्रुव हैं ।

उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्ट आदि भंग

1) 10 वें गुणस्थानक में रहा जीव ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4 व अंतराय की 5 इन 14 प्रकृतियों का 1-2 समय तक उत्कृष्ट प्रदेश बंध कर अनुत्कृष्ट बंध करता है, अतः अनुत्कृष्ट बंध की सादि हुई ।

2) जो जीव 10 वें गुणस्थानक को कभी पाए नहीं हैं उनकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट बंध अनादि है ।

अभव्य की अपेक्षा अनुत्कृष्ट बंध ध्रुव है और भव्य की अपेक्षा अनुत्कृष्ट बंध अध्रुव है ।

चौथे गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के पहले भाग में रहे जीव 7 कर्मों को बाँधते समय निद्राद्विक का 1-2 समय उत्कृष्ट बंध कर अनुत्कृष्ट बंध करते हैं । उस समय अनुत्कृष्ट बंध की सादि होती है ।

चौथे गुणस्थानक को नहीं पाए जीवों को निद्राद्विक का अनुत्कृष्ट बंध अनादि है ।

अभव्य की अपेक्षा निद्राद्विक का अनुत्कृष्ट बंध ध्रुव है और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है ।

चौथे से आठवें गुणस्थानक में रहे जीव 7 कर्म बाँधते समय भय-जुगुप्सा तथा अप्रत्याख्यानीय 4 का 1-2 समय उत्कृष्ट प्रदेश बंध कर अनुत्कृष्ट बंध करते हैं, उस समय अनुत्कृष्ट बंध की सादि होती है ।

अनादि मिथ्यादृष्टि को इन छह का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध अनादि है व अभव्य का अनुत्कृष्ट प्रदेश बंध ध्रुव व भव्य की अपेक्षा अध्रुव है ।

इस प्रकार 30 प्रकृतियों के अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध के सादि आदि चार भंग होते हैं । शेष उत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्य प्रदेश बंध के सादि और अध्रुव दो विकल्प होते हैं ।

30 प्रकृतियों को छोड़ शेष 90 प्रकृतियों में चारों बंध सादि और अध्रुव होते हैं ।

90 में से 73 प्रकृतियाँ अध्रुवबंधी हैं, अतः उनके तो चारों बंध सादि व अध्रुव हैं ।

शेष ध्रुवबंधी 17 में से स्त्यानर्द्धित्रिक, मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी का उत्कृष्ट प्रदेश बंध मिथ्यादृष्टि करता है ।

उत्कृष्ट योग के कारण उत्कृष्ट प्रदेश बंध 1-2 समय होता है फिर अनुत्कृष्ट प्रदेश बंध होता है । फिर उत्कृष्ट योग होने पर उत्कृष्ट बंध होता है ।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट का क्रम चलता रहता है, अतः दोनो बंध सादि व अध्रुव है ।

इन प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध सूक्ष्म निगोद में रहा लब्धि अपर्याप्त जीव अपने भव के पहले समय में करता है । दूसरे तीसरे समय में वही जीव अजधन्य प्रदेशबंध करता है । कालांतर में जघन्य प्रदेशबंध करता है, अतः दोनों बंध सादि व अध्रुव होते हैं ।

वर्णचतुष्क, तैजस, कार्मण अगुरुलघु, उपघात और निर्माण के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशबंध सादि और अध्रुव हैं ।

जघन्ययोगवाले लब्धि पर्याप्त सूक्ष्म निगोद जीव के उत्पत्ति के प्रथम समय में ध्रुवबंधी 47 का जघन्य प्रदेशबंध होता है । दूसरे समय में उस प्रकृति का अजघन्य प्रदेशबंध होता है ।

कालांतर में वही जीव पुनः सूक्ष्म निगोद में उत्पन्न होकर वही बंध करता है, अतः ध्रुवबंधी 47 प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध और अजघन्य-प्रदेशबंध सादि-अध्रुव है ।

शेष 47 प्रकृतियाँ अध्रुवबंधी होने से उन प्रकृतियों के उत्कृष्ट आदि चारों प्रदेशबंध सादि-अध्रुव ही होते हैं ।

उत्तर प्रकृति के उत्कृष्ट आदि प्रदेश बंध के भंग

उत्तर प्रकृति के उत्कृष्टादि प्रदेश बंध	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	कुल
ध्रुवबंधी 30 का अनुत्कृष्ट प्रदेश बंध	30	30	30	30	120
ध्रुवबंधी 17 + 73 अध्रुवबंधी 90 का अनुत्कृष्ट बंध	90			90	180
ध्रुवबंधी 47 + 73 अध्रुवबंधी 120 का उत्कृष्ट बंध	120			120	240
120 प्रकृति का जघन्य प्रदेशबंध	120			120	240
120 प्रकृति का अजघन्य प्रदेशबंध	120			120	240
कुल	**480**	**30**	**30**	**480**	**1020**

सेढिअसंखिज्जंसे जोगट्ठाणाणि पयडिठिइभेया ।
ठिइबंधज्झवसायाणुभागठाणा असंखगुणा ।।95।।
तत्तो कम्मपएसा अणंतगुणिया तओ रसच्छेया ।

–: शब्दार्थ :–

सेढिअसंखिज्जंसे=श्रेणि के असंख्यातवें भाग,	**असंखगुणा**=असंख्यात गुणे,
जोगट्ठाणाणि=योगस्थान,	**तत्तो**=उनसे भी,
पयडिठिइभेया=प्रकृतिभेद, स्थितिभेद,	**कम्मपएसा**=कर्मप्रदेश कर्म के स्कंध,
ठिइबंधज्झवसाया=स्थितिबंध के अध्यवसायस्थान,	**अणंतगुणिया**=अनन्तगुणे,
अणुभागठाणा=अनुभाग बंध के अध्यवसायस्थान,	**तओ**=उनसे भी,
	रसच्छेया=रसच्छेद, रस के अविभाग प्रतिच्छेद ।

भावार्थ :–योगस्थान श्रेणि के असंख्यातवें भाग है । उनसे प्रकृतियों के भेद, स्थितिभेद, स्थितिबंध के अध्यवसायस्थान और अनुभाग बंध के अध्यवसायस्थान अनुक्रम से असंख्यात गुणे, असंख्यातगुणे हैं । उनसे भी कर्म के स्कंध अनंतुगुणे हैं और कर्मस्कंधों से भी रसच्छेद अनंतगुणे हैं ।

विवेचन :–1. प्रकृति, 2. स्थिति, 3. प्रदेश, 4. रस, 5. योगस्थान, 6. स्थितिबंध अध्यवसाय, 7. अनुभाग बंध अध्यवसाय । इन सात भेदों का अल्प-बहुत्व बतलाते हैं ।

(1) सबसे कम योगस्थान है । योग अर्थात् वीर्य या शक्ति । सबसे जघन्य योग लब्धि अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद जीव को उत्पत्ति के पहले समय में होता है । सूचि श्रेणी के असंख्यातवें भाग में जितने आकाशप्रदेश होते योगस्थान हैं ।

(2) योगस्थानों से प्रकृति भेद असंख्यगुणे हैं । यद्यपि मूल 8 कर्मों की 158 उत्तर प्रकृतियाँ हैं, परंतु ज्ञानावरण आदि के बंध की विचित्रता से असंख्य भेद हैं । जीव अनंत होने पर भी एक समान बंध व उदयवाले अनेक जीव होते हैं, अतः प्रकृतियों के असंख्य भेद कहे हैं ।

(3) प्रकृति भेद से स्थिति स्थान असंख्यगुणे हैं । कोई जीव कभी

अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिबंध करता है, कोई उससे 1 समय अधिक, कोई दो समय अधिक । इस प्रकार स्थितिबंध के असंख्य स्थान होते हैं जो प्रकृति भेद से असंख्य गुणे हैं ।

(4) स्थिति भेद से स्थिति बंध के अध्यवसाय असंख्य गुणे हैं । क्योंकि 1-1 स्थितिबंध स्थान के असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण स्थितिबंध के अध्यवसाय हैं ।

(5) स्थितिबंध के अध्यवसाय स्थान से रसबंध के अध्यवसाय स्थान असंख्य गुणे हैं । प्रत्येक जीव को कृष्ण आदि लेश्या तरतमतावाली होने से प्रत्येक जीव के अध्यवसाय भिन्न-भिन्न होतै हैं ।

एक-एक स्थितिबंध के अध्यवसाय स्थान द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और जीव के भेद से असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण रसबंध के अध्यवसाय होते हैं ।

(6) रसबंध के अध्यवसायों से कर्म स्कंध अनंत गुणा है । एक समय में एक जीव अभव्य से अनंतगुण अथवा सिद्धराशि से अनंतगुणहीन कार्मण-स्कंधों को ग्रहण करता है ।

(7) कर्म स्कंधों से रसाणु अनंत गुणा है । एक-एक कार्मण स्कंध अभव्य से अनंत गुणा परमाणु से बना है और एक-एक कर्म पुद्गल में अनंतगुणा रसाणु होते हैं, अतः कर्म स्कंधों से रसाणु अनंत गुणा हैं ।

जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायाउ ।।96।।

–: शब्दार्थ :–

जोगा=योग से	**ठिइअणुभागं**=स्थितिबंध और अनुभागबंध,
पयडिपएसं=प्रकृतिबंध और प्रदेश बंध,	**कसायाउ**=कषाय द्वारा

भावार्थ :–प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योग से होते हैं और स्थितिबन्ध व अनुभाग बन्ध कषाय से होते हैं ।

विवेचन :–पूर्व में बंध के प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध, में प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध का कारण योग है और स्थितिबंध व अनुभागबंध का कारण कषाय है ।

योग एक शक्ति का नाम है जो निमित्त कारणों के मिलने पर कर्म वर्गणाओं को कर्मरूप परिणमाती है । योग के द्वारा कर्म पुद्गलों का अमुक

परिमाण में कर्म रूप होना और उनमें ज्ञानादि गुणों को आवरित करने का स्वभाव पड़ना, यह योग का कार्य है ।

आगत कर्मपुद्गलों का अमुक काल तक आत्मा के साथ सम्बन्ध रहना और उनमें तीव्र, मंद आदि फल देने की शक्ति का पड़ना कषाय द्वारा किया जाता है । इसीलिए प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध का कारण योग और स्थितिबंध व अनुभागबंध का कारण कषाय को माना है । जब तक कषाय रहती है तब तक तो चारों बंध होते हैं और कषाय का उपशम या क्षय हो जाने पर सिर्फ प्रकृति व प्रदेश बंध, ये दो बंध होते हैं ।

कषाय का उपशम व क्षय ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक में है, जिससे उन गुणस्थानों में प्रकृति व प्रदेश बंध होता है और चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान में योग का भी अभाव हो जाने से सदा के लिए कर्मोच्छेद हो जाता है ।

चउदसरज्जू लोगो बुद्धिकओ सत्तरज्जुमाणघणो ।
तद्दीहेगपएसा सेढी पयरो य तव्वग्गो ।।97।।

—: शब्दार्थ :—

चउदसरज्जू=चौदह राजू प्रमाण,	**तद्**=उसकी (घनीकृत लोक की),
लोगो=लोक,	**दीहेगपएसा**=लंबी एक प्रदेश की,
बुद्धिकओ=मति कल्पना के द्वारा किया गया,	**सेढी**=श्रेणि,
सत्तरज्जुमाणघणो=सात राजू प्रमाण का,	**पयरो**=प्रतर,
	य=और,
	तव्वग्गो=उसका वर्ग ।

गाथार्थ :—लोक चौदह राजू प्रमाण है, उसका मतिकल्पना के द्वारा समीकरण किये जाने पर वह सात राजू के घन प्रमाण होता है । उस घनीकृत लोक की लोकप्रमाण लम्बी प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणि कहते हैं और उसके वर्ग को प्रतर समझना चाहिए ।

विशेषार्थ : इस गाथा में लोक, श्रेणि और प्रतर का स्वरूप बतलाया है । लोक चौदह राजू है, किन्तु यह तो केवल उसकी ऊँचाई का ही प्रमाण बतलाया है । अतः यहाँ लोक का स्वरूप स्पष्ट करते हैं ।

सभी प्रकार के पदार्थ-जड़ या चेतन, दृश्यमान या अदृश्यमान, सूक्ष्म या स्थूल, स्थावर या जंगम आदि-जहाँ देखे जाते हैं अथवा जीव जहाँ अपने सुख-दुःख रूप पुण्य-पाप के फल का वेदन करते हैं, उसे लोक कहते

हैं । इन पदार्थों में होने वाली प्रत्येक क्रिया अथवा इन पदार्थों द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रिया का आधार यह लोक ही है ।

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव, ये द्रव्य जहाँ पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं । अर्थात् धर्म आदि षड् द्रव्यों का समूह लोक है । लोक का ऐसा कोई हिस्सा नहीं, जहाँ ये छह द्रव्य न पाये जाते हों ।

धर्म आदि उक्त छह द्रव्यों में से आकाश सर्वत्र व्यापक है, जबकि अन्य द्रव्य उसके व्याप्य हैं । अर्थात् आकाश धर्म आदि शेष पाँच द्रव्यों के साथ भी रहता है और उनके सिवाय उनसे बाहर भी रहता है । वह अनन्त है अर्थात् उसका अन्त नहीं है । अतः आकाश के जितने भाग में धर्मादि छह द्रव्य रहते हैं, उसे लोक कहते हैं और उसके अतिरिक्त शेष अनन्त आकाश अलोक है । त्रस, स्थावर आदि प्राणियों का आधार पृथ्वी है, पृथ्वी का आधार उदधि है, उदधि का आधार वायु है और वायु का आधार आकाश है ।

घनोदधि जलजातीय है और जमे हुए घी के समान इसका रूप है । इसकी मोटाई नीचे मध्य में बीस हजार योजन की है । घनोदधि के नीचे घनवायु का आवरण है, यानी घनोदधि घनवात से आवृत है । लम्बाई-चौड़ाई और परिधि असंख्यात योजन की है । यह घनवात भी तनुवात से आवृत है । इसकी लम्बाई-चौड़ाई परिधि तथा मध्य की मोटाई असंख्यात योजन की है ।

शास्त्र में लोक का आकार **'सुप्रतिष्ठ संस्थान'** वाला कहा है ।

जमीन पर एक सकोरा उलटा, उस पर दूसरा सकोरा सीधा और उस पर तीसरा सकोरा उलटा रखने से जो आकार बनता है, वह सुप्रतिष्ठ संस्थान कहलाता है और यही आकार लोक का है ।

जैसे कि लोक का आकार कटिप्रदेश पर हाथ रखकर तथा पैरों को पसार कर नृत्य करने वाले पुरुष के समान है । इसी लिए लोक को पुरुषाकार की उपमा दी है ।

लोक के अधः, मध्य और ऊर्ध्व ये तीन विभाग हैं और इन विभागों के होने का मध्यबिंदु मेरु पर्वत ये मूल में हैं । इस मध्य लोक के बीचोंबीच मेरु पर्वत है, जमीन में एक हजार योजन और ऊपर जमीन पर 99000 योजन है । जमीन के समतल भाग पर इसकी लम्बाई-चौड़ाई चारों दिशाओं में दस हजार योजन की है । मेरु पर्वत के पाये के एक हजार में से नौ सौ योजन के नीचे जाने पर अधोलोक प्रारम्भ होता है और अधोलोक के ऊपर 1800 योजन तक मध्यलोक है । अर्थात् नौ सौ योजन नीचे और नौ सौ योजन ऊपर, कुल मिलाकर 1800 योजन मध्यलोक की सीमा है और मध्यलोक के

बाद ऊपर का सभी क्षेत्र ऊर्ध्वलोक कहलाता है। इन तीनों लोकों में अधोलोक और ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई, चौड़ाई से ज्यादा और मध्यलोक में ऊँचाई की अपेक्षा लम्बाई चौड़ाई अधिक है, क्योंकि मध्यलोक की ऊंचाई तो सिर्फ 1800 योजन प्रमाण है और लम्बाई-चौड़ाई एक राजू प्रमाण।

अधोलोक और ऊर्ध्वलोक की लंबाई-चौड़ाई भी एक-सी नहीं है। अधोलोक की लंबाई-चौड़ाई सातवें नरक में सात राजू से कुछ कम है और पहला नरक एक राजू लंबा-चौड़ा है जो मध्यलोक की लंबाई-चौड़ाई के बराबर है। ऊर्ध्वलोक की लंबाई-चौड़ाई पाँचवें देवलोक में पांच राजू और उसके बाद एक-एक प्रदेश की कमी करने पर लोक के चरम ऊपरी भाग पर एक राजू लंबाई-चौड़ाई रहती है। यानी ऊर्ध्वलोक का अन्तिम भाग मध्यलोक के बराबर लंबा-चौड़ा है।

लोक की उक्त लंबाई-चौड़ाई आदि का सारांश यह है कि नीचे जहाँ सातवाँ नरक है वहाँ सात राजू चौड़ा है और वहाँ से घटता-घटता सात राजू ऊपर आने पर जहाँ पहला नरक है, वहाँ एक राजू चौड़ाई है। उसके बाद क्रमशः बढ़ते-बढ़ते पाँचवें देवलोक के पास चौड़ाई पाँच राजू और उसके बाद क्रमशः घटते-घटते अंतिम भाग में एक राजू चौड़ाई है। संपूर्ण लोक की लंबाई चौदह राजू और अधिकतम चौड़ाई सात राजू तथा जघन्य चौड़ाई एक राजू है।

यह लोक त्रस और स्थावर जीवों से खचाखच भरा हुआ है। त्रस जीव तो त्रसनाड़ी में ही रहते हैं लेकिन स्थावर जीव त्रस और स्थावर दोनों ही नाड़ियों में रहते हैं।

इस चौदह राजू ऊँचे तथा अधिकतम सात राजू और न्यूनतम एक राजू लंबे-चौड़े लोक की घनाकार कल्पना की जाय तो सात राजू ऊँचाई, सात राजू लंबाई और सात राजू चौड़ाई होगी। क्योंकि समस्त लोक के एक-एक राजू प्रमाण टुकड़े किये जायें तो 343 टुकड़े होते हैं। उनमें से अधोलोक के 196 और ऊर्ध्वलोक के 147 घनराजू हैं और इनका घनमूल 7 होता है। अतः घनीकृत लोक का प्रमाण सात राजू है और घनराजू 343 होते हैं।

इसके समीकरण करने की रीति इस प्रकार है-अधोलोक के नीचे का विस्तार सात राजू है और दोनों ओर से घटते-घटते सात राजू की ऊँचाई पर मध्य लोक के पास वह एक राजू शेष रहता है। इस अधोलोक के बीच में से दो समान भाग करके यदि दोनों भागों को उलटकर बराबर-बराबर रखा जाये तो उसका विस्तार नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर चार-चार राजू होता है किंतु ऊँचाई सर्वत्र सात राजू ही रहती है।

अधोलोक का समीकरण करने के बाद अब ऊर्ध्वलोक का समीकरण करते हैं। ऊर्ध्वलोक मध्यभाग में पूर्व पश्चिम 5 राजू चौड़ा है। उसमें से मध्य के तीन राजू क्षेत्र को ज्यों का त्यों छोड़कर दोनों ओर से एक-एक राजू के चौड़े और साढ़े तीन साढ़े तीन राजू के ऊँचे दो त्रिकोण खंड लें। उन दोनों खंडों को मध्य से विभक्त करने पर चार त्रिकोण खंड हो जाते हैं। जिनमें से प्रत्येक खंड की भुजा एक राजू और कोटि पौने दो राजू होती है। इन चारों खंडों को उलटा सीधा करके उनमें से दो खंड ऊर्ध्वलोक के अधोभाग में दोनों ओर और दो खंड उसके ऊर्ध्वभाग के दोनों ओर मिला देना चाहिए। ऐसा करने पर ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई में तो अन्तर नहीं पड़ता किन्तु उसका विस्तार सर्वत्र तीन राजू हो जाता है।

ऊर्ध्वलोक के उक्त नये आकार को अधोलोक के नये आकार के साथ मिला देने पर सात राजू चौड़ा, सात राजू ऊँचा और सात राजू मोटा चौकोर क्षेत्र हो जाता है। अतः ऊँचाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों सात-सात राजू होने के कारण लोक सात राजू का घनरूप सिद्ध होता है।

यद्यपि लोक वृत्त है और यह घन समचतुरस्र होता है। अतः इसका वृत्त करने के लिए उसे 19 से गुणा करके 22 से भाग देना चाहिए। तब वह कुछ कम सात राजू लम्बा, चौड़ा, गोल सिद्ध होता है। लेकिन व्यवहार में सात राजू का समचतुरस्रघन लोक समझना चाहिए।

इस प्रकार से लोक का स्वरूप बतलाने के बाद अब श्रेणि और प्रतर का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। सात राजू लम्बी आकाश के एक-एक प्रदेश की पंक्ति को श्रेणि कहते हैं। जहाँ कहीं भी श्रेणि के असंख्यातवें भाग का कथन किया जाये, वहाँ इसी श्रेणि को लेना चाहिए।

श्रेणि के वर्ग को प्रतर कहते हैं अर्थात् श्रेणि में जितने प्रदेश हैं, उनको उतने ही प्रदेशों से गुणा करने पर प्रतर का प्रमाण आता है। समान दो संख्याओं का आपस में गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न होती है, वह उस संख्या का वर्ग कहलाता है। जैसे 7 का 7 से गुणा करने पर उसका वर्ग 49 होता है। अथवा सात राजू लम्बी और सात राजू चौड़ी एक-एक प्रदेश की पंक्ति को प्रतर कहते हैं।

प्रतर (वर्ग) और श्रेणि को परस्पर में गुणा करने पर घन का प्रमाण होता है। अर्थात् समान तीन संख्याओं का परस्पर गुणा करने पर घन होता है। जैसे 7 x7 x 7 = 343, यह 7 का घन होता है।

इस प्रकार श्रेणि, प्रतर और घन लोक का प्रमाण समझना चाहिए।

उपशम-श्रेणी

अणदंसनपुंसित्थीवेयछक्कं च पुरिसवेयं च ।
दो दो एगंतरिए सरिसे सरिसं उवसमेइ ।।98।।

—: शब्दार्थ :—

अणदंसनपुंसित्थीवेय=अनंतानबंधी कषाय, दर्शन मोहनीय, नपुंसक वेद स्त्रीवेद,	**च**=और,
छक्कं=हास्यादि षट्क,	**दो-दो**=दो दो,
च=तथा,	**एगंतरिए**=एक-एक के अन्तर से,
पुरिसवेयं=पुरुष वेद,	**सरिसे सरिसं**=सदृश, एक जैसी,
	उवसमेइ=उपशमित करता है ।

भावार्थ :—(उपशमश्रेणी करनेवाला) पहले अनंतानुबंधी कषाय का उपशम करता है, अनन्तर दर्शन मोहनीय का और उसके पश्चात् क्रमशः नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्यादि षट्क व पुरुषवेद और उसके बाद एक-एक (संज्वलन) कषाय का अन्तर देकर दो-दो सदृश कषायों का एक साथ उपशम करता है ।

विवेचन :—उपशम श्रेणी का स्वरूप इस प्रकार है कि जिन परिणामों के द्वारा आत्मा मोहनीय कर्म का सर्वथा उपशमन करती है, ऐसे उत्तरोत्तर वृद्धिंगत परिणामों की धारा को उपशमश्रेणि कहते हैं । इस उपशमश्रेणी का प्रारम्भक अप्रमत्त संयत ही होता है और उपशमश्रेणी से गिरने वाला अप्रमत्त संयत, प्रमत्त संयत, देशविरति या अविरति में से भी कोई हो सकता है । अर्थात् गिरने वाला अनुक्रम से चौथे गुणस्थान तक आता है और वहाँ से गिरे तो दूसरे और उससे पहले गुणस्थान को भी प्राप्त करता है ।

उपशमश्रेणी के दो भाग हैं—(1) उपशम भाव का सम्यक्त्व और (2) उपशम भाव का चारित्र । इनमें से चारित्र मोहनीय का उपशमन करने के पहले उपशम भाव का सम्यक्त्व सातवें गुणस्थान में ही प्राप्त होता है । क्योंकि दर्शन मोहनीय की सातों प्रकृतियों को सातवें में ही उपशमित किया जाता है, जिससे उपशमश्रेणी का प्रस्थापक अप्रमत्त संयत ही है ।

अनंतानुबंधी कषाय के उपशमन का वर्णन इस प्रकार है कि चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक में से किसी एक गुणस्थानवर्ती जीव अनंतानुबंधी कषाय का उपशमन करने के लिए यथा प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक तीन करण करता है। यथाप्रवृत्तकरण में प्रतिसमय उत्तरोत्तर अनंतगुणी विशुद्धि होती है। जिसके कारण शुभ प्रकृतियों में अनुभाग की वृद्धि और अशुभ प्रकृतियों में अनुभाग की हानि होती है। किन्तु स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि या गुणसंक्रम नहीं होता है, क्योंकि यहाँ उनके योग्य विशुद्ध परिणाम नहीं होते हैं। यथाप्रवृत्तकरण का काल अन्तर्मुहूर्त है।

उक्त अन्तर्मुहूर्त काल समाप्त होने पर दूसरा अपूर्वकरण होता है। इस कारण में स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि, गुणसंक्रम और अपूर्व स्थितिबंध, ये पाँचों कार्य होते हैं। अपूर्वकरण के प्रथम समय में कर्मों की जो स्थिति होती है, स्थितिघात के द्वारा उसके अंतिम समय में वह संख्यातगुणी कम कर दी जाती है। रसघात के द्वारा अशुभ प्रकृतियों का रस क्रमशः क्षीण कर दिया जाता है। गुणश्रेणी रचना में प्रकृतियों की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति को छोड़कर ऊपर की स्थिति वाले दलिकों में से प्रतिसमय कुछ दलिक ले-लेकर उदयावली के ऊपर की स्थिति वाले दलिकों में उनका निक्षेप कर दिया जाता है। दलिकों का निक्षेप इस प्रकार किया जाता है कि पहले समय में जो दलिक लिये जाते हैं, उनमें से सबसे कम दलिक प्रथम समय में स्थापित किये जाते हैं, उससे असंख्यातगुणे दलिक दूसरे समय में, उससे असंख्यातगुणे दलिक तीसरे समय में स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त के अंतिम समय पर्यन्त असंख्यातगुणे, असंख्यातगुणे दलिकों का निक्षेप किया जाता है। दूसरे आदि समयों में भी जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं, उनका निक्षेप भी इसी प्रकार किया जाता है।

गुणश्रेणी में पहले समय में ग्रहण किये जाने वाले दलिक थोड़े होते हैं और उसके बाद प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे, असंख्यातगुणे दलिकों का ग्रहण किया जाता है तथा दलिकों का निक्षेप अविशिष्ट समयों में ही होता है, अन्तर्मुहूर्त काल से ऊपर समयों में निक्षेप नहीं किया जाता है। इसी दृष्टि और क्रम को यहाँ भी समझना चाहिए कि पहले समय में ग्रहण किए दलिक अल्प हैं, अनन्तर दूसरे आदि समयों में वे असंख्यातगुणे हैं और उन सबकी रचना अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण समयों में होती है। काल का प्रमाण

अन्तर्मुहूर्त से आगे नहीं बढ़ता है ।

गुणसंक्रम के द्वारा अपूर्वकरण के प्रथम समय में अनंतानुबंधी आदि अशुभ प्रकृतियों के थोड़े दलिकों का अन्य प्रकृतियों में संक्रमण होता है और उसके बाद प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे दलिकों का अन्य प्रकृतियों में संक्रमण होता है । अपूर्वकरण के प्रथम समय में ही स्थितिबंध भी अपूर्व अर्थात् बहुत थोड़ा होता है ।

अपूर्वकरण का काल समाप्त होने पर तीसरा अनिवृत्तिकरण होता है । इसमें भी प्रथम समय से ही स्थितिघात आदि अपूर्व स्थितिबंध पर्यन्त पूर्वोक्त पांचों कार्य एक साथ होने लगते हैं । इसका काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । उसमें से संख्यात भाग बीत जाने पर जब एक भाग शेष रहता है तब अनंतानुबंधी कषाय के एक आवली प्रमाण नीचे के निषेकों को छोड़कर शेष निषेकों का भी पूर्व में बताये मिथ्यात्व के अन्तरकरण की तरह इनका भी अन्तरकरण किया जाता है । जिन अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिकों का अन्तरकरण किया जाता है, उन्हें वहाँ से उठाकर बँधने वाली अन्य प्रकृतियों में स्थापित कर दिया जाता है । अन्तरकरण के प्रारंभ होने पर दूसरे समय में अनन्तानुबन्धी कषाय के ऊपर की स्थिति वाले दलिकों का उपशम किया जाता है । यह उपशम पहले समय में थोड़े दलिकों का होता है, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणे, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणे दलिकों का उपशम किया जाता है । इसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रमशः असंख्यातगुणे, असंख्यातगुणे दलिकों का प्रतिसमय उपशम किया जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि इतने समयों में संपूर्ण अनंतानुबंधी कषाय का उपशम हो जाता है और यह उपशम इतना सुदृढ़ होता है कि उदय, उदीरणा, निधत्ति आदि करणों के अयोग्य हो जाता है । यही अनंतानुबंधी कषाय का उपशम है ।

अनंतानुबंधी का उपशम करने के बाद दर्शनमोहनीयत्रिक– मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का उपशम करता है । इनमें से मिथ्यात्व का उपशम तो मिथ्यादृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि (क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि) करते हैं, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का उपशम वेदक सम्यग्दृष्टि ही करता है । मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है तब मिथ्यात्व का उपशम करता है । किन्तु उपशम श्रेणि में यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व उपयोगी नहीं होता लेकिन द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उपयोगी होता

है । क्योंकि इसमें दर्शनत्रिक का संपूर्णतया उपशम होता है । इसीलिए यहाँ दर्शनत्रिक का उपशमक वेदक सम्यग्दृष्टि को माना है ।

इस प्रकार से अनन्तानुबंधी कषाय और दर्शनत्रिक का उपशमन करने के बाद चारित्रमोहनीय के उपशम का क्रम प्रारंभ होता है ।

चारित्र मोहनीय का उपशम करने के लिए पुनः यथाप्रवृत्त आदि तीन करण करता है । लेकिन इतना अंतर है कि सातवें गुणस्थान में यथाप्रवृत्त-करण होता है, अपूर्वकरण आठवें गुणस्थान में तथा अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थान में होता है । यहाँ भी स्थितिघात आदि कार्य होते हैं, किन्तु इतनी विशेषता है कि चौथे से सातवें गुणस्थान तक जो अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण होते हैं, उनमें उसी प्रकृति का गुणसंक्रमण होता है जिसके संबन्ध में वे परिणाम होते हैं । किन्तु अपूर्वकरण गुणस्थान में संपूर्ण अशुभ प्रकृतियों का गुणसंक्रम होता है ।

अपूर्वकरण के काल में से संख्यातवाँ भाग बीत जाने पर निद्राद्विक-निद्रा और प्रचला का बंधविच्छेद होता है । उसके बाद और काल बीतने पर सुरद्विक, पंचेन्द्रियजाति आदि तीस प्रकृतियों का तथा अंतिम समय में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का बंधविच्छेद होता है ।

इसके बाद अनिवृत्तिकरण गुणस्थान होता है, उसमें भी पूर्ववत् स्थितिघात आदि कार्य होते हैं । अनिवृत्तिकरण के असंख्यात भाग बीत जाने पर चारित्रमोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का अन्तरकरण करता है । जिन कर्मप्रकृतियों का उस समय बंध और उदय होता है उसके अन्तरकरण संबन्धी दलिकों को प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थिति में क्षेपण करता है । जैसे कि पुरुषवेद के उदय से श्रेणि चढ़ने वाला पुरुषवेद का । जिन कर्मों का उस समय केवल उदय ही होता है और बंध नहीं होता है, उनके अन्तरकरण संबन्धी दलिकों को प्रथम स्थिति में ही क्षेपण करता है, द्वितीय स्थिति में नहीं । जैसे कि स्त्रीवेद के उदय से श्रेणि चढ़ने वाला स्त्रीवेद का । जिन कर्मों का उदय नहीं होता किन्तु उस समय केवल बंध ही होता है, उनके अन्तरकरण सम्बंधी दलिकों का द्वितीय स्थिति में क्षेपण करता है, प्रथम स्थिति में नहीं । जैसे कि संज्वलन क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़ने वाला शेष संज्वलन कषायों का, किन्तु जिन कर्मों का न तो बंध ही होता है और न उदय ही, उनके

अन्तरकरण संबन्धी दलिकों का अन्य प्रकृतियों में क्षेपण करता है । जैसे कि द्वितीय और तृतीय कषाय का ।

अन्तरकरण करके एक अन्तर्मुहूर्त में नपुंसक वेद का उसके बाद एक अन्तर्मुहूर्त में स्त्रीवेद का और उसके बाद हास्यादि षट्क का उपशम होते ही पुरुषवेद के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है ।

हास्यादि षट्क की उपशमना के अनन्तर समय कम दो आवलिका मात्र में सकल पुरुषवेद का उपशम करता है । जिस समय में हास्यादि षट्क उपशान्त हो जाते हैं और पुरुषवेद की प्रथम स्थिति क्षीण हो जाती है, उसके अनन्तर समय में अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन क्रोध का एक साथ उपशम करना प्रारंभ करता है और जब संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में एक आवलिका काल शेष रह जाता है तब संज्वलन क्रोध के बन्ध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम । उस समय संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थितिगत एक आवलिका को और ऊपर की स्थितिगत एक समय कम दो आवलिका में बद्ध दलिकों को छोड़कर शेष दलिक उपशान्त हो जाते हैं । उसके बाद समय कम दो आवलिका काल में संज्वलन क्रोध का उपशम हो जाता है ।

जिस समय में संज्वलन क्रोध के बन्ध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर संज्वलन मान की द्वितीय स्थिति से दलिकों को लेकर प्रथम स्थिति करता है । प्रथम स्थिति करने के समय से लेकर अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन मान का एक साथ उपशम करना प्रारंभ करता है । संज्वलन मान की प्रथम स्थिति में समय कम तीन आवलिका शेष रहने पर अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण मान के दलिकों का संज्वलन मान में प्रक्षेप नहीं किया जाता किन्तु संज्वलन माया आदि में किया जाता है । एक आवलिका शेष रहने पर संज्वलन मान के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है और अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम हो जाता है । उस समय में संज्वलन मान की प्रथम स्थितिगत एक आवलिका और एक समय कम दो आवलिका में बाँधे गये ऊपर की स्थितिगत कर्मदलिकों को छोड़कर

शेष दलिकों का उपशम हो जाता है । उसके बाद समय कम दो आवलिका में संज्वलन मान का उपशम करता है ।

जिस समय में संज्वलन मान के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर संज्वलन माया की द्वितीय स्थिति से दलिकों को लेकर पूर्वोक्त प्रकार से प्रथम स्थिति करता है और उसी समय से लेकर तीनों माया का एक साथ उपशम करना प्रारम्भ करता है । संज्वलन माया की प्रथम स्थिति में समय कम तीन आवलिका शेष रहने पर अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण माया के दलिकों का संज्वलन माया में प्रक्षेप नहीं करता किन्तु संज्वलन लोभ में प्रक्षेप करता है और एक आवलिका शेष रहने पर संज्वलन माया के बन्ध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम हो जाता है । उस समय में संज्वलन माया की प्रथम स्थितिगत एक आवलिका और समय कम दो आवलिका में बाँधे गये ऊपर की स्थितिगत दलिकों को छोड़कर शेष का उपशम हो जाता है । उसके बाद समय कम दो आवलिका में संज्वलन माया का उपशम करता है ।

जब संज्वलन माया के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर संज्वलन लोभ की द्वितीय स्थिति से दलिकों को लेकर पूर्वोक्त प्रकार से प्रथम स्थिति करता है । लोभ का जितना वेदन काल होता है, उसके तीन भाग करके उनमें से दो भाग प्रमाण प्रथम स्थिति का काल रहता है । प्रथम विभाग में पूर्व स्पर्धकों में से दलिकों को लेकर अपूर्वस्पर्धक करता है अर्थात् पहले के स्पर्धकों में से दलिकों को ले-लेकर उन्हें अत्यन्त रसहीन कर देता है । द्वितीय विभाग में पूर्वस्पर्धकों और अपूर्वस्पर्धकों से दलिकों को लेकर अनन्त कृष्टि करता है अर्थात् उनमें अनन्तगुणा हीन रस करके उन्हें अंतराल से स्थापित कर देता है । कृष्टिकरण के काल के अन्त समय में अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण लोभ का उपशम करता है । उसी समय में संज्वलन लोभ के बंध का विच्छेद होता है । इसके साथ ही नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का अंत हो जाता है ।

इसके बाद दसवाँ सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान होता है । इस गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है । उसमें आने पर ऊपर की स्थिति से कुछ कृष्टियों को लेकर सूक्ष्मसंपराय के काल के बराबर प्रथम स्थिति को करता है और एक

समय कम दो आवलिका में बँधे हुए शेष दलिकों का उपशम करता है । सूक्ष्मसंपराय के अंतिम समय में संज्वलन लोभ का उपशम हो जाता है । उसी समय में ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अंतराय की पाँच, यशःकीर्ति और उच्च गोत्र, इन प्रकृतियों के बन्ध का विच्छेद होता है । अनन्तर समय में ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्तकषाय हो जाता है और इस गुणस्थान में मोहनीय की २८ प्रकृतियों का उपशम रहता है ।

यद्यपि उपशम श्रेणि में मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियों का पूरी तरह उपशम किया जाता है, परन्तु उपशम कर देने पर भी उस कर्म का अस्तित्व तो बना ही रहता है । उपशम श्रेणी में ही जीव का आयुष्य पूरा हो जाय तो वह जीव मरकर अवश्य वैमानिक देव बनता है ।

यह उपशम अन्तर्मुहूर्त काल के लिए किया जाता है । अतः दसवें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ का उपशम करके जब जीव ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचता है तो कम-से-कम एक समय और अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त के बाद उपशम हुई कषायें अपना उद्रेक कर बैठती हैं । जिसका फल यह होता है कि उपशम श्रेणि का आरोहक जीव जिस क्रम से ऊपर चढ़ा था, उसी क्रम से नीचे उतरना शुरू कर देता है और उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है । उपशांत कषाय वाले जीव का पतन अवश्यंभावी है ।

अतः ज्यों-ज्यों नीचे उतरता जाता है, वैसे-वैसे चढ़ते समय जिस-जिस गुणस्थान में जिन-जिन प्रकृतियों का बंधविच्छेद किया था, उस-उस गुणस्थान में आने पर वे प्रकृतियाँ पुनः बँधने लगती हैं ।

उतरते-उतरते वह सातवें या छठे गुणस्थान में ठहरता है और यदि वहाँ भी अपने को संभाल नहीं पाता है तो पाँचवें और चौथे गुणस्थान में पहुँचता है । यदि अनंतानुबंधी का उदय आ जाता है तो सासादन सम्यग्दृष्टि होकर पुनः मिथ्यात्व में पहुँच जाता है । और इस तरह सब किया-कराया चौपट हो जाता है ।

लेकिन यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि यदि पतनोन्मुखी उपशम श्रेणी का आरोहक छठे गुणस्थान में आकर संभल जाता है तो पुनः उपशम श्रेणी चढ़ सकता है । क्योंकि संपूर्ण भवचक्र में चार बार और एक भव में दो बार उपशम श्रेणी चढ़ सकता है । परन्तु जो जीव दो बार उपशम श्रेणी चढ़ता है, वह जीव उसी भव में क्षपक श्रेणी का आरोहण नहीं कर सकता । जो

एक बार उपशम श्रेणी चढ़ता है वह कार्मग्रन्थिक मतानुसार दूसरी बार क्षपक श्रेणी भी चढ़ सकता है । सैद्धांतिक मतानुसार तो एक भव में एक जीव एक ही श्रेणी चढ़ता है अर्थात् उपशम श्रेणी चढनेवाला फिर क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ता है ।

उपशम श्रेणि का आरोहण क्रम पुरुषवेद के उदय से श्रेणी चढ़ने वाले जीव की अपेक्षा बतलाया गया है । यदि स्त्रीवेद के उदय से कोई जीव श्रेणी चढ़ता है तो वह पहले नपुंसक वेद का उपशम करता है और फिर क्रम से पुरुषवेद, हास्यादिक-षट्क और स्त्रीवेद का उपशम करता है । यदि नपुंसक वेद के उदय से कोई जीव श्रेणी चढ़ता है तो वह पहले स्त्रीवेद का उपशम करता है, उसके बाद क्रमशः पुरुषवेद, हास्यादि षट्क का और नपुंसक वेद का उपशम करता है । सारांश यह है कि जिस वेद के उदय से श्रेणी चढ़ता है उस वेद का उपशम सबसे पीछे करता है ।

यदि स्त्री उपशम श्रेणी पर चढ़ती है तो पहले नपुंसकवेद का उपशम करती है, उसके बाद चरम समय मात्र उदय स्थिति को छोड़कर स्त्रीवेद के शेष सभी दलिकों का उपशम करती है । उसके बाद अवेदक होने पर पुरुषवेद आदि सात प्रकृतियों का उपशम करती है । यदि नपुंसक उपशम श्रेणी पर चढ़ता है तो एक उदय स्थिति को छोड़कर शेष नपुंसक वेद का तथा स्त्रीवेद का एक साथ उपशम करता हैं । उसके बाद अवेदक होने पर पुरुषवेद आदि सात प्रकृतियों का उपशम करता है ।

उपशम श्रेणी का आरंभक सप्तम गुणस्थानवर्ती जीव है और अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, मिथ्यात्व और सम्यग् मिथ्यात्व का उपशम करने पर सातवाँ गुणस्थान होता है । क्योंकि इनके उदय होते हुए सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।

उपशम श्रेणी में भी अनन्तानुबन्धी आदि का उपशम किया जाता है । अतः ऐसी दशा में पुनः उपशम श्रेणी में उनका उपशम बतलाने का कारण यह है कि वेदक सम्यक्त्व, देशचारित्र और सकलचारित्र की प्राप्ति उक्त प्रकृतियों के क्षयोपशम से होती है । अतः उपशम श्रेणी का प्रारंभ करने से पहले उक्त प्रकृतियों का क्षयोपशम रहता है, न कि उपशम । इसीलिए उपशम श्रेणि में अनन्तानुबन्धी आदि के उपशम को बतलाया है ।

उपशम और क्षयोपशम में अन्तर

क्षयोपशम, उदय में आये हुए कर्मदलिकों के क्षय और सत्ता में

विद्यमान कर्मों के उपशम से होता है । परन्तु क्षयोपशम की इतनी विशेषता है कि उसमें घातक कर्मों का प्रदेशोदय रहता है और उपशम में किसी भी तरह का उदय नहीं होता है अर्थात् न तो प्रदेशोदय और न रसोदय । क्षयोपशम में प्रदेशोदय होने पर भी सम्यक्त्व आदि का घात न होने का कारण यह है कि उदय दो प्रकार का है—फलोदय और प्रदेशोदय । लेकिन फलोदय होने से गुण का घात होता है और प्रदेशोदय के अत्यन्त मंद होने से गुण का घात नहीं होता है । इसीलिए उपशम श्रेणि में अनन्तानुबन्धी आदि का फलोदय और प्रदेशोदय रूप दोनों प्रकार का उपशम माना जाता है ।

<table>
<tr><td colspan="2"></td><td>उपशमन
संज्वलन लोभ 28</td><td colspan="2"></td></tr>
<tr><td colspan="2">अप्रत्याख्यानावरण लोभ
26</td><td colspan="3">प्रत्याख्यानावरण लोभ
27</td></tr>
<tr><td colspan="5">संज्वलन माया
25</td></tr>
<tr><td colspan="2">अप्रत्याख्याना० माया
23</td><td colspan="3">प्रत्याख्याना० माया
24</td></tr>
<tr><td colspan="5">संज्वलन मान 22</td></tr>
<tr><td colspan="2">अप्रत्याख्याना० मान
20</td><td colspan="3">प्रत्याख्याना० मान
21</td></tr>
<tr><td colspan="5">संज्वलन क्रोध 19</td></tr>
<tr><td colspan="2">अप्रत्याख्याना० क्रोध
17</td><td colspan="3">प्रत्याख्याना० क्रोध
18</td></tr>
<tr><td colspan="5">पुरुष वेद 16
हास्यादि षट्क 15
स्त्रीवेद 9
नपुंसक वेद 8</td></tr>
<tr><td colspan="5">मिथ्यात्व 5, मिश्र 6, सम्यक्त्व मोह० 7</td></tr>
<tr><td colspan="5">अनन्तानुबंधी क्रोध 1, मान 2, माया 3, लोभ 4</td></tr>
</table>

क्षपक-श्रेणी

अणमिच्छमीससम्मं तिआउ इगविगलथीणतिगुज्जोवं ।
तिरिनयरथावरदुगं साहारायवअडनपुत्थीए ।।99।।
छगपुंसंजलणादोनिद्दविग्घवरणक्खए नाणी ।

—: शब्दार्थ :—

अण=अनंतानुबंधी कषाय,
मिच्छ=मिथ्यात्व मोहनीय,
मीस=मिश्र मोहनीय,
सम्मं=सम्यक्त्व मोहनीय,
तिआउ=तीन आयु,
इगविगल=एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय,
थीणतिग=स्त्यानर्द्धित्रिक,
उज्जोवं=उद्योत नाम,
तिरिनरयथावरदुगं=तिर्यंचद्विक नरकद्विक, स्थावरद्विक,
साहारायव=साधारण नाम, आतप नाम,
अड=आठ कषाय,
नपुंत्थीए=नपुंसक वेद और स्त्रीवेद,
छग=हास्यादि षट्क,
पुं=पुरुष वेद,
संजलणा=संज्वलन कषाय,
दोनिद्द=दो निद्रा (निद्रा और प्रचला),
विग्घवरणक्खए=पांच अंतराय, पांच ज्ञानावरण ओर चार दर्शनावरण के क्षय होने पर,
नाणी=केवलज्ञानी ।

भावार्थ :—(क्षपक श्रेणीवाला) अनंतानुबंधी कषाय, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, तीन आयु, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, स्त्यानर्द्धित्रिक, उद्योत नाम, तिर्यंचद्विक, नरकद्विक, स्थावरद्विक, साधारण नाम, आतप नाम, आठ (दूसरी और तीसरी) कषाय, नपुंसक वेद, स्त्री वेद तथा हास्यादि षट्क, पुरुष वेद, संज्वलन कषाय, दो निद्रायें, पाँच अंतराय, पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, इन प्रकृतियों का क्षय करके जीव केवलज्ञानी होता है ।

विवेचन :—उपशम श्रेणी में मोहनीय की प्रकृतियों को उपशांत किया जाता है, जबकि उनकी सत्ता बनी रहती है, जबकि क्षपकश्रेणी में मोहनीय

आदि कर्मों की सत्ता ही नष्ट कर दी जाती है, अतः उन कर्मों का पुनः उदय नहीं होता है ।

क्षपक श्रेणी में मोहनीय का संपूर्ण क्षय होने से आत्मा पूर्ण शुद्धि प्राप्त कर केवलज्ञानी बन जाती है ।

आठ वर्ष से अधिक आयुष्यवाला, प्रथम संघयणवाला, चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें गुणस्थान में रहा मनुष्य क्षपक श्रेणी पर चढ़ सकता है ।

क्षपकश्रेणी में कर्मप्रकृतिक्षय–

सबसे पहले अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क का क्षय करता है और उसके शेष अनंतवें भाग का मिथ्यात्व में स्थापन कर मिथ्यात्व और उस अंश का एक साथ में नाश करता है । उसके बाद मिश्र व समकित मोहनीय की प्रकृति का क्षय करता है ।

जब मिश्र की स्थिति एक आवलिका मात्र बाकी रह जाती है, तब सम्यक्त्व मोहनीय की स्थिति आठ वर्ष प्रमाण बाकी रहती है, उसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण खंड-खंड करके खपाता है, जब उसके अंतिम स्थितिखंड को खपाता है, तब उस क्षपक को `कृतकरण' कहते हैं ।

इस कृतकरण में कोई जीव मरता है तो वह चारों गतियों में से किसी भी गति में उत्पन्न हो सकता है ।

यदि पूर्व में बद्ध आयुवाला जीव क्षपक श्रेणी प्रारंभ करता है और अनंतानुबंधी के क्षय के बाद मरण हो तो उस अवस्था में मिथ्यात्व का उदय होने पर पुनः अनंतानुबंधी का बंध करता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय में अनंतानुबंधी का अवश्य बंध होता है परंतु मिथ्यात्व का क्षय हो जाने पर अनंतानुबंधी का बंध नहीं होता है ।

बद्धायु होने पर भी यदि उस समय मरण न हो तो अनंतानुबंधी व दर्शनमोह का क्षय कर वहीं रुक जाता है, चारित्रमोह के नाश के लिए प्रयत्न नहीं करता है ।

उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी दोनों का केन्द्रबिन्दु मोहनीय कर्म है और उपशम श्रेणी में मोहनीय कर्म का उपशम होने से पुनः उदय हो जाता

है । जिससे पतन होने पर की गई पारिणामिक शुद्धि व्यर्थ हो जाती है । किन्तु क्षपक श्रेणी में मोहनीय कर्म का समूल क्षय होने से पुनः उदय नहीं होता है और उदय न होने से पारिणामिक शुद्धि पूर्ण होकर आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेती है और केवलज्ञानी हो जाती है ।

उपशम श्रेणी में सिर्फ मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का ही उपशम होता है लेकिन क्षपक श्रेणी में मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के साथ नामकर्म की कुछ प्रकृतियों व ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय कर्म की प्रकृतियों का भी क्षय होता है ।

क्षपक श्रेणी में प्रकृतियों के क्षय का क्रम इस प्रकार है–

आठ वर्ष से अधिक आयु वाला उत्तम संहनन का धारक चौथे, पाँचवें, छठे अथवा सातवें गुणस्थानवर्ती मनुष्य क्षपक श्रेणी प्रारंभ करता है । सबसे पहले वह अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क का एक साथ क्षय करता है और उसके शेष अनंतवें भाग को मिथ्यात्व में स्थापन करके मिथ्यात्व और उस अंश का एक साथ नाश करता है । उसके बाद इस प्रकार क्रमशः सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करता है ।

जब सम्यग्मिथ्यात्व की स्थिति एक आवलिका मात्र बाकी रह जाती है तब सम्यक्त्व मोहनीय की स्थिति आठ वर्ष प्रमाण बाकी रहती है । उसके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण खण्ड कर-करके खपाता है । जब उसके अंतिम स्थितिखण्ड को खपाता है तब उस क्षपक को कृतकरण कहते हैं । इस कृतकरण के काल में यदि कोई जीव मरता है तो वह चारों गतियों में से किसी भी गति में उत्पन्न हो सकता है ।

यदि क्षपक श्रेणी का प्रारंभ बद्धायु जीव करता है और अनंतानुबंधी के क्षय के पश्चात् उसका मरण हो तो उस अवस्था में मिथ्यात्व का उदय होने पर वह जीव पुनः अनंतानुबंधी का बंध करता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय में अनंतानुबंधी नियम से बँधती है, किन्तु मिथ्यात्व का क्षय हो जाने पर पुनः अनंतानुबंधी का बंध नहीं होता है । बद्धायु होने पर भी यदि कोई जीव उस समय मरण नहीं करता है तो अनंतानुबंधी कषाय और दर्शनमोह का क्षपण करने के बाद वह वहीं ठहर जाता है, चारित्रमोहनीय के क्षपण करने का

प्रयत्न नहीं करता है । यदि अबद्धायु होता है तो वह उस श्रेणी को समाप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करता है । अतः अबद्धायुष्क सकल श्रेणी को समाप्त करने वाले मनुष्य के तीन आयु-देवायु, नरकायु और तिर्यंचायु का अभाव तो स्वतः ही हो जाता है तथा पूर्वोक्त क्रम से अनंतानुबंधी चतुष्क और दर्शनत्रिक का क्षय चौथे आदि चार गुणस्थानों में कर देता है ।

इस प्रकार दर्शनमोहसप्तक का क्षय करने के पश्चात् चारित्रमोहनीय का क्षय करने के लिए यथाप्रवृत्त आदि तीन करणों को करता है । अपूर्वकरण में स्थितिघात आदि के द्वारा अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क और प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क कुल आठ प्रकृतियों का इस प्रकार क्षय किया जाता है कि अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में उनकी स्थिति पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र रह जाती है । अनिवृत्तिकरण के संख्यात भाग बीत जाने पर-स्त्यानर्द्धित्रिक, नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रिक ये चार जातियाँ, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण, इन सोलह प्रकृतियों की स्थिति उद्वेलना संक्रमण के द्वारा उद्वेलना होने पर पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र रह जाती है और उसके बाद गुणसंक्रमण के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों में उनका प्रक्षेप कर-करके उन्हें बिल्कुल क्षीण कर दिया जाता है । यद्यपि अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षय का प्रारंभ पहले ही कर दिया जाता है, किन्तु अभी तक वे क्षीण नहीं होती हैं कि अंतराल में पूर्वोक्त सोलह प्रकृतियों का क्षपण किया जाता है और उनके क्षय के पश्चात् आठ कषायों का भी अन्तर्मुहूर्त में ही क्षय कर देता है ।

उसके पश्चात् नौ नोकषाय और चार संज्वलन कषायों में अन्तरकरण करता है । फिर क्रमशः नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और हास्यादि छह नोकषायों का क्षपण करता है और उसके बाद पुरुषवेद के तीन खंड करके दो खण्डों का एक साथ क्षपण करता है और तीसरे खण्ड को संज्वलन क्रोध में मिला देता है ।

उक्त क्रम पुरुषवेद के उदय से श्रेणी चढ़नेवाले के लिए बताया है । यदि स्त्री श्रेणी पर आरोहण करती है तो पहले नपुंसकवेद का क्षपण करती है, उसके बाद क्रमशः पुरुषवेद, छह नोकषाय और स्त्रीवेद का क्षपण करती

है । यदि नपुंसक श्रेणी आरोहण करता है तो वह पहले स्त्रीवेद का क्षपण करता है, उसके बाद क्रमशः पुरुषवेद, छह नोकषाय और नपुंसकवेद का क्षपण करता है ।

वेद के क्षपण के बाद संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षपण उक्त प्रकार से करता है । यानी संज्वलन क्रोध के तीन खण्ड करके दो खंडों का तो एक साथ क्षपण करता है और तीसरे खंड को संज्वलन मान में मिला देता है । इसी प्रकार मान के तीसरे खंड को माया में मिलाता है और माया के तीसरे खण्ड को लोभ में मिलाता है । प्रत्येक के क्षपण करने का काल अन्तर्मुहूर्त है और श्रेणीकाल अन्तर्मुहूर्त है किन्तु वह अन्तर्मुहूर्त बड़ा है ।

संज्वलन लोभ के तीन खंड करके दो खण्डों का तो एक साथ क्षपण करता है किन्तु तीसरे खण्ड के संख्यात खण्ड करके चरम खंड के सिवाय शेष खंडों को भिन्न-भिन्न समय में खपाता है और फिर उस चरम खंड के भी असंख्यात खंड करके उन्हें दसवें गुणस्थान में भिन्न-भिन्न समय में खपाता है । इस प्रकार लोभ कषाय का पूरी तरह क्षय होने पर अनन्तर समय में क्षीणकषाय हो जाता है । क्षीणकषाय गुणस्थान के काल के संख्यात भागों में से एक भाग काल बाकी रहने तक मोहनीय के सिवाय शेष कर्मों में स्थितिघात आदि पूर्ववत् होते हैं । उसमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय और दो निद्रा (निद्रा और प्रचला) इन सोलह प्रकृतियों की स्थिति को क्षीणकषाय के काल के बराबर करता है किन्तु निद्राद्विक की स्थिति को एक समय कम करता है । इनकी स्थिति के बराबर होते ही इनमें स्थितिघात वगैरह कार्य बन्द हो जाते हैं और शेष प्रकृतियों के होते रहते हैं । क्षीणकषाय के उपान्त समय में निद्राद्विक का क्षय करता है और शेष चौदह प्रकृतियों का अन्तिम समय में क्षय करता है और उसके अनन्तर समय में वह सयोगकेवली हो जाता है ।

यह सयोगकेवली अवस्था जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से कुछ कम एक पूर्वकोटि काल की होती है । इस काल में भव्य जीवों के प्रतिबोधार्थ देशना, विहार आदि करते हैं । यदि उनके वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति आयुकर्म से अधिक होती है तो उनके समीकरण के लिए यानी आयुकर्म की स्थिति के बराबर वेदनीय आदि तीन अघातिया कर्मों की स्थिति को करने के

लिए समुद्घात करते हैं, जिसे केवलीसमुद्घात कहते हैं और उसके पश्चात् योग का निरोध करने के लिए उपक्रम करते हैं। यदि आयुकर्म के बराबर ही वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति हो तो समुद्घात नहीं करते हैं।

योग के निरोध का उपक्रम इस प्रकार है कि सबसे पहले बादर काययोग के द्वारा बादर मनोयोग को रोकते हैं, उसके पश्चात बादर वचनयोग को रोकते हैं और उसके पश्चात् सूक्ष्मकाय के द्वारा बादर काययोग को रोकते हैं, उसके बाद सूक्ष्म मनोयोग को, उसके पश्चात् सूक्ष्म वचनयोग को रोकते हैं। इस प्रकार बादर, सूक्ष्म मनोयोग, वचनयोग और बादर काययोग को रोकने के पश्चात् सूक्ष्म काययोग को रोकने के लिए सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान करते है। उस ध्यान में स्थितिघात आदि के द्वारा सयोगि अवस्था के अंतिम समय पर्यन्त आयुकर्म के सिवाय शेष कर्मों का अपवर्तन करते हैं। ऐसा करने से अन्तिम समय में सब कर्मों की स्थिति अयोगि अवस्था के काल के बराबर हो जाती है। यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि अयोगि अवस्था में जिन कर्मों का उदय नहीं होता है, उनकी स्थिति एक समय कम होती है।

सयोगकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय में साता या असाता वेदनीय में से कोई एक वेदनीय, औदारिक, तैजस, कार्मण, छह संस्थान, प्रथम संहनन, औदारिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, शुभ और अशुभ विहायोगति, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर और निर्माण, इन तीस प्रकृतियों के उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है और उसके अनन्तर समय में अयोगकेवली हो जाते हैं।

इस अयोगकेवली अवस्था में व्युपरतक्रियाप्रतिपाती ध्यान को करते हैं। यहाँ स्थितिघात आदि नहीं होता है, अतः जिन कर्मों का उदय होता है, उनको तो स्थिति का क्षय होने से अनुभव करके नष्ट कर देते हैं, किन्तु जिन प्रकृतियों का उदय नहीं होता, उनका स्तिबुकसंक्रम के द्वारा वेद्यमान प्रकृतियों में संक्रम करके अयोगि अवस्था के उपांत समय तक वेदन करते हैं और उपांत समय में 72 का और अंत समय में 13 प्रकृतियों का क्षय करके निराकार, निरंजन होकर नित्य सुख के धाम मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

सिद्ध अवस्था की प्राप्ति	
148 प्रकृतियों का क्षय	
12/13 प्रकृतियों का क्षय (14 वें गुणस्थान में)	
72/73 प्रकृतियों का क्षय (13 वें गुणस्थान में)	
ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5 = 14 (12 वें गुणस्थान में)	
दो निद्रायें 2 (12 वे गुणस्थान के उपांत समय में)	
संज्वलन लोभ 1 (दसवें गुणस्थान में)	
संज्वलन माया 1	नौवें गुणस्थान में
संज्वलन मान 1	
संज्वलन क्रोध 1	
पुरुषवेद 1	
हास्यादि षट्क 6	
स्त्रीवेद 1	
नपुंसकवेद 1	
एकेन्द्रिय आदि 16	
अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ (8 वें गुणस्थान में)	
देव, नरक, तिर्यंच आयु 3	(4, 5, 6, 7 वें गुणस्थान में)
सम्यक्त्व मोहनीय 3	
मिश्र मोहनीय 2	
मिथ्यात्व मोहनीय 1	
अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ	

'नमिय जिणं धुवबंधोदयसत्ता' आदि पहली गाथा में जिन विषयों के वर्णन करने की प्रतिज्ञा की गई थी, उनका वर्णन करने के पश्चात् ग्रन्थकार अपना और ग्रंथ का नाम बतलाते हुए ग्रंथ को समाप्त करते हैं ।

देविंदसूरिलिहियं सयगमिणं आयसरणट्ठा ।।100।।

–: शब्दार्थ :–

देविंदसूरि=देवेन्द्रसूरि ने,	**इणं**=यह ग्रंथ,
लिहियं=लिखा,	**आयसरणट्ठा**=आत्मस्मरण करने
सयगं=शतक नाम का,	बोध प्राप्त करने के लिए ।

गाथार्थ :–देवेन्द्रसूरि ने आत्मा का बोध प्राप्त करने के लिए इस शतक ग्रन्थ की रचना की है ।

विवेचन :–उपसंहार के रूप में ग्रन्थकार अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि इस ग्रंथ का नाम `शतक' है, क्योंकि इसमें सौ गाथायें हैं और उनमें प्रारम्भ में की गई प्रतिज्ञा के अनुसार वर्ण्य विषयों का वर्णन किया गया है और यह ग्रन्थ स्वस्वरूप बोध के लिए बनाया गया है ।

इस प्रकार पंचम कर्मग्रन्थ की व्याख्या समाप्त हुई ।

❑ ❑ ❑

पाँचवाँ-कर्मग्रंथ (भाग-5)

प्रवचन प्रभावक परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित
204 पुस्तकों में से प्राप्य हिन्दी भाषा में जैन धर्म का अमूल्य खजाना

Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	13-14	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना-भाग-1-2	140/-	26.	166	आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2	60/-
2.	34-35	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	27.	167	Pearls of Preaching	60/-
3.	36	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	28.	169	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	64/-
4.	42	भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)	40/-	29.	170	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	70/-
5.	53	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-	30.	172	रत्न-संदेश-भाग-1	150/-
6.	61	Panch Pratikraman Sootra	60/-	31.	174	रत्न-संदेश-भाग-2	150/-
7.	84	प्रभु दर्शन सुख संपदा	60/-	32.	178	परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-
8.	97	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	100/-	33.	179	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
9.	100	बीसवी सदी के महान योगी	300/-	34.	183	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
10.	104	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	150/-	35.	186	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
11.	109	आओ ! उपधान पौषध करें !	45/-	36.	190	संस्मरण	50/-
12.	122	नव तत्त्व-विवेचन	60/-	37.	191	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	70/-
13.	123	जीव विचार विवेचन	60/-	38.	193	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
14.	128	विविध-तपमाला	100/-	39.	194	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
15.	136	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	90/-	40.	102	कर्मग्रंथ (भाग-1)	100/-
16.	140	वैराग्य शतक	80/-	41.	196	कर्मग्रंथ (भाग-2)	70/-
17.	144	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-	42.	197	कर्मग्रंथ (भाग-3)	55/-
18.	145	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	70/-	43.	198	आदर्श-कहानियाँ	60/-
19.	146	आध्यात्मिक पत्र	60/-	44.	200	अमृत रस का प्याला	300/-
20.	153	ध्यान साधना	40/-	45.	201	महान् योगी पुरुष	85/-
21.	156	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-	46.	202	बारह चक्रवर्ती	64/-
22.	161	अजातशत्रु अणगार	100/-	47.	203	प्रेरक-प्रवचन	80/-
23.	163	The way of Metaphysical Life	60/-	48.	204	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	100/-
24.	164	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-				
25.	165	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-				

Shubhay 98205 30299